परिप्रेक्ष्य

शैक्षिक योजना और प्रशासन का सामाजिक-आर्थिक संदर्भ

वर्ष 20, अंक 1, अप्रैल 2013

राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन विश्वविद्यालय

17-बी, श्री अरविंद मार्ग, नई दिल्ली-110 016

500 प्रतियां

© राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन विश्वविद्यालय, 2013
(भारत सरकार द्वारा विश्वविद्यालय अनुदान आयोग अधिनियम 1956 की धारा 3
के अंतर्गत घोषित)

इस पत्रिका का प्रकाशन प्रति वर्ष अप्रैल, अगस्त और दिसंबर माह में किया जाता है। इसकी प्रतियां चुनिंदा और इच्छुक व्यक्तियों तथा संस्थानों को नि:शुल्क भेजी जाती हैं। यह न्यूपा की वेबसाइट: www.nuepa.org पर नि:शुल्क उपलब्ध है। इसे प्राप्त करने के इच्छुक व्यक्ति और संस्थान निम्निलिखित पते पर आवेदन करें :

अकादमिक संपादक
परिप्रेक्ष्य
राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन विश्वविद्यालय (न्यूपा)
17–बी, श्री अरविंद मार्ग, नई दिल्ली–110 016

राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन विश्वविद्यालय (न्यूपा) के लिए कुलसचिव, न्यूपा द्वारा प्रकाशित तथा बचन सिंह, बी–275, अवन्तिका, रोहिणी सेक्टर 1, नई दिल्ली द्वारा लेजर टाइपसेट होकर मै. अनिल आफसेट एंड पैकेजिंग प्रा. लि., दिल्ली–110007 में न्यूपा के प्रकाशन विभाग द्वारा मुद्रित।

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 20, अंक 1, अप्रैल 2013

विषय सूची

आलेख

वसंत श्रीनिवास राव
प्राथमिक शिक्षा में अभिभावक-अध्यापक संघ के सदस्यों की भागीदारी : जनजातीय क्षेत्रों का केस अध्ययन 1

शोभारानी दुबे
प्राचीन भारत में उच्च शिक्षा की विशिष्ट संस्थाएं और उनका प्रबंधन 17

बीरेन्द्र सिंह
व्यगोत्स्की के चिंतन में भाषा का केंद्रीय तत्व और भाषा विकास की प्रक्रिया 39

नीरा गौतम और **रजनी रंजन सिंह**
बिहार में विद्यालयी शिक्षा का स्वरूप और विकास 47

वी.के. राय और **आर.पी. राय**
ग्रामीण-शहरी वित्तपोषित और स्ववित्तपोषित बी.एड. कालेजों के प्रशिक्षणार्थियों द्वारा व्यक्त मूल्यों का तुलनात्मक अध्ययन 59

शोध टिप्पणी / संवाद

नीलिमा सिंह
सर्व शिक्षा अभियान के मौलिक सिद्धान्त एवं राष्ट्र के निर्माण में उसका योगदान 79

एस.के. त्यागी और **सीमा शर्मा**
विद्यार्थियों द्वारा गणित अधिगम प्रक्रिया का गुणात्मक अध्ययन 89

चिंतक और चिंतन

आर.पी. पाठक और **अमिता पाण्डेय**
आचार्य नरेन्द्र देव के शैक्षिक विचारों की प्रासंगिकता 105

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 20, अंक 1, अप्रैल 2013

प्राथमिक शिक्षा में अभिभावक-अध्यापक संघ के सदस्यों की भागीदारी

जनजातीय क्षेत्रों का केस अध्ययन

वसंत श्रीनिवास राव*

सार संक्षेप

प्रारंभिक शिक्षा का सार्वभौमिकरण को प्राप्त करने के लिये सामुदायिक भागीदारी शैक्षिक कार्यक्रमों की क्रियान्वयन नीतियों में से एक है। शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009 प्राथमिक शिक्षा में निर्णय लेने की प्रक्रिया में सामुदायिक भागीदारी पर बल देता है। अधिनियम से पहले, विविध शैक्षिक कार्यक्रम स्कूल स्तर पर सामुदायिक भागीदारी का प्रयास कर रहे थे। अभिभावक-अध्यापक संघ (पी.टी.ए.) उनमें से एक समिति है जिसके माध्यम से प्रारंभिक शिक्षा का सार्वजनीकरण का लक्ष्य प्राप्त किया जा सकता है। यह आलेख आदिवासी क्षेत्रों में अभिभावक-अध्यापक संघ के अनुभव जन्य तथ्यों को प्रस्तुत करता है। इस अध्ययन से यह निष्कर्ष निकालता है कि इनको पी.टी.ए. का सदस्य बनाने के लिये इन पर और अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है।

प्रस्तावना

सामुदायिक भागीदारी, अंतरराष्ट्रीय स्तर पर एक प्रचलित वाक्य न केवल शिक्षा के क्षेत्रों बल्कि अन्य क्षेत्रों जैसे स्वास्थ्य और जल प्रबंधन जैसे क्षेत्रों पर भी बल देता है (दत्ता तथा विर्गो 1998; रामचन्द्रन 2001 : शेखर 2003, स्विफट मोरगन, 2006)। स्थानीय आबादी की भागीदारी से सामुदायिक भागीदारी होती है और कभी-कभी अतिरिक्त हितधारकों द्वारा कार्यक्रमों या नीतियों के सृजन, संदर्भ और संचालन से भी उनके जीवन में परिवर्तन आता है। जेनिन्गस (2000 पृ. 1)

---

* सेंटर फार द स्टडी आफ सोशल एक्सक्लूसन एंड इंक्लूसिव पॉलिसी (सी.एस.एस.ई.आई.पी.) स्कूल ऑफ सोशल साइन्सेज़, हैदराबाद विश्वविद्यालय, गाचीबॉली, हैदराबाद-500 046

> पॉल (1987 पृ. 5) विश्व बैंक रिपोर्ट में सामुदायिक भागीदारी को एक ऐसी सक्रिय प्रक्रिया बताया है जहाँ हितधारक विकास परियोजनाओं की दिशा और क्रियान्वयन को प्रभावित करते हैं, वे केवल इनसे लाभ ही प्राप्त नहीं करते। विमला रामचन्द्रन (2001 पृ. 2244) में इसे वर्णित करते हुये कहा है कि सामुदायिक भागीदारी का अर्थ है शक्तिहीन लोगों की भागीदारी जिनकी समुदाय, भौगोलिक तथा लैंगिक रूप में पहुंच नहीं है।

शिक्षा के क्षेत्र में स्कूली शिक्षा के वितरण में अध्यापन और अधिगम की गुणवत्ता और प्रासंगिकता में सुधार के साथ-साथ सामुदायिक भागीदारी सार्वभौमिक प्राथमिक नामांकन हासिल करने के लिये सबसे अच्छे अभ्यास के रूप में उभरा है। वैश्विक आंदोलनों के संदर्भ में जैसे, सबके लिये शिक्षा के संदर्भ में जिसका उद्देश्य 2015 तक सभी बच्चों को गुणवत्तायुक्त मुफ्त प्राथमिक शिक्षा सुनिश्चित करना है (यूनेस्को, 2000), कई देशों पर इसको पूरा करने के लिए अंतरराष्ट्रीय और घरेलू दबाव है। भारत, खासकर अनुसूचित जनजातियों के रूप में हाशिए पर समुदायों के मामलों में ई.एफ.ए. को प्राप्त करने के दबाव को झेल रहा है। हेरोदिया (1995 पृ. 891) आदिवासियों के लिये भागीदारी के महत्व को बताते हुए कहा है कि उन्हें अपने विकास के लिये स्वयं भागीदारी करनी होगी जहां शिक्षा की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण है।

डी.पी.ई.पी. (जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम), लोक जुम्बिश, तथा सर्वशिक्षा अभियान से सूक्ष्म स्तर पर विभिन्न सामुदायिक गुटों के महत्व को पहचाना है तथा सतत् रूप से उनको स्कूलों के साथ जोड़ने का प्रयास कर रहा है। मध्य प्रदेश और आंध्र प्रदेश जैसे कुछ राज्य पंचायती राज संस्थाओं से स्थानीय निर्वाचित प्रतिनिधियों को इन संरचनाओं से जोड़ने का गंभीरता से प्रयास कर रहे हैं। (गोविंदा तथा दीवान, 2003) विभिन्न राज्यों द्वारा 1980 के दशक के मध्य से विभिन्न शैक्षिक कार्यक्रमों के क्रियान्वयन द्वारा सामुदायिक सदस्यों को स्कूल के करीब लाने के प्रयासों से 2001 की जनगणना में पिछड़े राज्यों की साक्षरता दर में त्वरित वृद्धि हुई।

शिक्षा का अधिकार अधिनियम और सामुदायिक भागीदारी

हाल के अधिनियम, नि:शुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा अधिनियम, 2001, बच्चों का अधिकार में भी इन तथ्यों का अहसास हुआ है और बच्चों की शिक्षा में माता-पिता की भागीदारी की आवश्यकता पर बल दिया गया। इस अधिनियम में स्कूल प्रबंधन समिति की

आवश्यकता पर बल दिया गया जिसके अंतर्गत पंचायती राज संस्थाओं के स्थानीय प्रतिनिधि और अध्यापकों को अभिन्न अंग बनाया जायेगा। अधिनियम स्पष्ट रूप से स्कूल प्रबंधन समिति की कार्यात्मक भूमिका को स्पष्ट करता है तथा इन बच्चों की शिक्षा स्कूल स्तर पर देने के लिए इसे जवाबदेह बनाता है। (भारत सरकार, 2009, पृ.7)। इस अधिनियम के अंतर्गत मानक नियम स्कूलों की सूचारु कार्यप्रणाली हेतु (भारत सरकार, 2009 बी, पृ. 8) अभिभावक तथा शिक्षकों की ड्यूटी को विशेष रूप से चिन्हित किया गया। भारत सरकार, 2009 बी, पृ. 8)। अधिनियम में स्कूल प्रबंधन समिति की संरचना को निम्नाकिंत रूप से स्पष्ट किया गया है:

> एक स्कूल प्रबंधन समिति होनी चाहिये जिसमें स्थानीय निकायों के निर्वाचित प्रतिनिधि, इन विद्यालयों में नामांकन बच्चों के माता-पिता या अभिभावक तथा शिक्षक सम्मिलित होने चाहिये; प्रावधान हो कि इस समिति के तीन-चौथाई सदस्य अभिभावक या माता-पिता होने चाहिये। आगे यह भी प्रावधान हो कि वंचित और कमजोर वर्ग के बच्चों के माता-पिता तथा अभिभावकों को आनुपातिक प्रतिनिधित्व दिया जाये; आगे यह भी प्रावधान रखा जाये कि 50% समिति के सदस्य महिलायें रहें' (भारत सरकार, 2009, पृ. 7)

हम समुदाय की भागीदारी के संदर्भ में अधिनियम में एस.एम.सी. की संरचना से समझ सकते है कि प्राथमिक शिक्षा में समुदाय के 'सीमित प्रतिनिधित्व पर बल दिया गया है। इस आधार पर हम अधिनियम की आलोचना कर सकते हैं। पिछले अध्ययनों में, कुछ राज्यों में, ग्राम शिक्षा समितियों के काम-काज का आकलन करने के प्रयास किया गया है। ग्राम शिक्षा समिति, बनर्जी एट एल 2007, श्रीनिवास रॉव 2007, पांडे एट एल 2010)। ग्राम शिक्षा समितियों में सीमित प्रतिनिधित्व की वजह से गांव स्तर पर सामुदायिक गतिशीलता और जवाबदेही की कमी के कारण समुदाय की भागीदारी कम हुई है, ग्राम स्तर पर एस.एम.सी. के संचालन में इन तथ्यों को ध्यान में रखते हुये, मैं पी.टी.ए. को एक ऐसी समिति मानता हूँ जहाँ अभिभावकों और शिक्षकों को स्कूल कामकाज के लिये जवाबदेह बनाया जाना चाहिये। पी.टी.ए. स्कूल के बच्चों के अभिभावकों और सभी शिक्षकों जो स्कूल के सदस्य होते हैं, की एक समिति है। इसलिये, पी.टी.ए. स्कूल से संबंधित गतिविधियों की निर्णय लेने की प्रक्रिया में भाग लेने के लिये कुल प्रतिनिधित्व की कसौटी को पूरा करती है। पी.टी.ए. द्वारा कुल प्रतिनिधित्व के सिद्धांत को पूरा और

यू.ई.ई. के लक्ष्यों को हासिल करने के लिये शक्तिहीन समुदाय की भागीदारी आवश्यक है। इस तर्क की दृष्टि में, वर्तमान अध्ययन में आदिवासी क्षेत्रों में पी.टी.ए. के सदस्यों के कामकाज के बारे में अनुमानजन्य सबूत आंध्र प्रदेश राज्य के प्रस्तुत किये गये हैं।

लगभग सभी राज्यों और केन्द्र शासित प्रदेशों में डी.पी.ई.पी. के तहत पी.टी.ए. का गठन किया गया और सर्व शिक्षा कार्यान्वयन के दौरान इसे मजबूत बनाने की अपेक्षा की जाती है। ये पी.टी.ए. विशेष रूप से ग्राम शिक्षा योजनाओं और स्कूल सुधार की योजना के विकास में, सूक्ष्म नियोजन में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। पी.टी.ए. के सदस्यों को स्कूल में कामकाज के लिए एक तंत्र के रूप में देखा जाता है। प्रमुख शिक्षा नीतियों ने यह महसूस किया है कि ज़मीनी स्तर पर प्राथमिक शिक्षा के विकेन्द्रीकरण द्वारा आदिवासी समुदाय (भारत सरकार, 1986, पृ. 98–102) के शैक्षिक विकास को बढ़ाता है। पी.टी.ए. की आम सभा को स्कूल से संबंधित विभिन्न मुद्दों पर चर्चा करने के लिये एक वर्ष में कम से कम दो बार बैठक करनी है, पी.टी.ए. आंध्र प्रदेश में, आंध्र प्रदेश स्कूल शिक्षा (सामुदायिक भागीदारी) अधिनियम 1998 (आंध्र प्रदेश सरकार, पृ. 2) के अनुसार अपने कार्य करता है। इस पत्र में एक प्रयास जनजातीय क्षेत्र में चयनित नमूना गांवों में पी.टी.ए. के सदस्यों के बारे में जागरूकता और भागीदारी को प्रस्तुत करने के लिये किया गया है।

विधि

वर्तमान अध्ययन पूर्वी गोदावरी, आंध्र प्रदेश के रम्पाचोडावरम अभिकरण क्षेत्र के तीन मंडलों में किया गया था। एक बहुआयामी नमूना विधि मंडल गांवों और उत्तरदाताओं के लिये चुनी गई थी। सात में से तीन मंडलों, अर्थात, गंगावरम, मारेदुम्मली और वाय. रमावरम को सबसे कम साक्षरता दर के आधार पर चयन किया गया था और यह चयन 2001 के जनगणना के आधार पर किया गया था। व्यवस्थित नमूना पद्धति के आधार पर इन तीन नमूना मंडलों में से 26 गांवों को चुना गया। इन तीन नमूना मंडलों में से प्रत्येक मंडल के सभी गांवों में से 10% को चुना गया। कुल 165 उत्तरदाताओं में से अभिभावकों और शिक्षकों का प्रतिनिधित्व सरल यादृच्छिक नमूना विधि द्वारा, इन 26 नमूना गांवों से चुने गये। 165 नमूना उत्तरदाताओं में प्रत्येक पी.टी.ए. का प्रतिनिधित्व करते हुये चार से पांच सदस्यों के साथ 118 अभिभावक थे और 47 शिक्षक थे। पी.टी.ए. के सदस्यों (दोनों माता–पिता और शिक्षकों की सूची) स्कूलों से प्राप्त हुई। आंकड़ा समूह के लिये

अपनाई गई तकनीक संरचित प्रश्नावली, केंद्रित समूह चर्चा, क्षेत्र टिप्पणियों और स्कूल के अभिलेखों के सत्यापन के आधार पर किया गया।

उत्तरदाताओं की पृष्ठभूमि

अध्ययन के लिये चयनित गांवों में अनुसूचित जनजाति समुदाय से संबंधित परिवार 33% से अधिक है। वे अपने मुख्यालय से 9 से 184 कि.मी. की दूरी पर रहते हैं और उनमें से ज्यादातर एक पहाड़ी ईलाके के क्षेत्र में स्थित हैं। इन गांवों में बुनियादी सुविधा जैसे बिजली (31%), पोस्ट आफिस (9%), बस सुविधा (16%) और आंगनवाड़ी केन्द्र (44%) हैं। इन नमूना उत्तरदाताओं की जाति पृष्ठभूमि भिन्न हैं। आधे से अधिक माता-पिता उत्तरदाता आदिम जाति समूह (पी.टी.जी.) के रूप में नामित रहे हैं जो कोडारेड्डी समूह (51.69%) के हैं।

नमूने में अन्य जाति समूह बाल्मिकी (14.4%), कोंडाडोरा (11.02%), परागी पोरजा (9.32%), कोंडा कमारा (6.78%), कोंडा कापू 3.39%) और कोया (3.39%) हैं। इन उत्तरदाताओं की शिक्षा पृष्ठभूमि भी प्राथमिक शिक्षा (44%) के रूप में भिन्न है। इन उत्तरदाताओं में ज़्यादातर सीमान्त किसान (66.1%) हैं और 16.9% के पास जमीन नहीं है। उनकी आजीविका खेती मज़दूर (41.5%), स्थानांतरण कृषि (35.6%), दैनिक मज़दूरी श्रम (15.3%) और उनमें से कुछ किसान (6.8%) हैं। नमूने के लिये चयनित शिक्षक उत्तरदाताओं की सामाजिक पृष्ठभूमि है कि उनमें से बहुमत कोंडारेड्डी (63. 83%) से संबंधित हैं और आम जातीय समूहों कोया (12.77%), बाल्मिकी (12. 77%), कोडाडोरा (2.13%) है और अन्य (8.51%) हैं। इनमें से अधिकांश शिक्षक इंटरमीडिएट शिक्षा (42.55%) तथा माध्यमिक शिक्षा (40.43%) के लिये योग्य थे। स्नातक स्तर की पढ़ाई के लिये योग्य शिक्षक (12.77%) थे और इनमें से कुछ शिक्षक (4.26%) प्राथमिक शिक्षा की पढ़ाई के लिये भी योग्य थे।

निष्कर्ष

जागरूकता

यह चौंकाने वाला तथ्य हे कि 118 में से 29 उत्तरदाताओं ने जो अभिभावक उत्तरदात्ता (24.58%) हैं, इनका कहना है कि उन्हें गांव में पी.टी.ए. की स्थिति का पता है जबकि ऐसे शिक्षक उत्तरदाताओं में यह 55.32% रहा। देखें (तालिका-1)। पी.टी.ए. कामकाज

की सरंचनात्मक बाधाओं के बारे में समझाते हुये एक व्यक्ति ने कहा, वह गांव में पी.टी.ए. के अस्तित्व के बारे में नहीं जानता था। वाई. रमावरम मंडल के सिंधुवादा गांव में पी.टी.ए. के एक सदस्य के रूप में अभिभावक ने कहा जो कोई भी गांव में स्कूल में रुचि रखता है, स्कूल में सम्मिलित होने की कोशिश करता है। प्रेरित करने के लिये और स्कूल की गतिविधियों में भाग लेने के लिये हमारे पास दबाव डालने के लिये किसी भी तरह का कोई संगठित समूह नहीं है। हम एक अभिभावक के रूप में अपनी दिलचस्पी की वजह से शामिल होना चाहते हैं। इधर कोंडला भीमरेड्डी की प्रतिक्रिया भी काफी दिलचस्प है। उन्होंने कहा कि कोई संरचित समिति गांव में मौजूद नहीं है। लेकिन कुछ माता–पिता भले ही दिलचस्पी दिखा रहे हैं। ऊपरी विचारों के अनुसार थुर्रमबुल्लीदोरा, वाई. रामावरम मंडल की कोथापकालु गांव में पी.टी.ए. में एक शिक्षक सदस्य (पी.टी.ए. में अपनी सदस्यता के बारे में इन्हें पता था) ने कहा कि माता–पिता अपने बच्चों को स्कूल भेजते हैं। यह उनकी स्वयं की भागीदारी के रूप में एक अच्छा काम है। यह निश्चित रूप से स्कूल में बच्चों को भेजने के लिये सराहनीय काम है। हालांकि, उनके लिये यह काम नहीं है। उनसे यह भी अपेक्षा की जाती है, कि उन्हें ''सार्वभौमिक उद्देश्यों'' के लिये नियमित बैठकों और आम फैसले धारण करके ''स्कूल की गतिविधियां नियंत्रित'' करने के साथ ही अन्य कार्यों को भी समाप्त करना होता है। इसे मज़बूती देने के लिये, राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 (भारत सरकार 1986, पृ. 98) के अनुसार, लोगों की भागीदारी से शैक्षिक संस्थानों और समुदाय शिक्षा की प्रासंगिकता और गुणवत्ता में सुधार, अनुपस्थित और लापरवाही की कमी, सामुदायिक संस्थानों का अधिक से अधिक उपयोग और शैक्षिक संस्थानों के प्रबंधन में बेहतर अनुशासित के बीच घनिष्ठ संबंधों की स्थापना होनी चाहिए।

अभिभावकों में 20% को पी.टी.ए. में उनकी सदस्यता के बारे में पता है। इनमें से केवल 29.97% को पी.टी.ए. में उनकी भूमिका के बारे में पता है। शिक्षकों के मामले में यह 31.91% हैं। (तालिका–1) आंकड़े यह भी दर्शाते हैं कि माता–पिता उत्तरदाताओं का 72.03% और पी.टी.ए. में शिक्षक उत्तरदाताओं का 34.04% उनकी भूमिकाओं (तालिका–2) के बारे में नहीं जानते हैं। आंध्र प्रदेश स्कूल शिक्षा (सामुदायिक भागीदारी) अधिनियम के अनुसार 1998 में, स्कूल के प्रधानाध्यापक की महत्वपूर्ण जिम्मेदारियों के साथ प्रत्येक शैक्षणिक वर्ष 30 जून से पहले पी.टी.ए. का गठन होता है। तत्पश्चात् उन्हें

तालिका-1

जागरूकता से संबंधित विभिन्न संकेतकों पर पी.टी.ए. सदस्यों का ज्ञान

भूमिका	सकारात्मक प्रतिक्रिया देने वाले पी.टी.ए. सदस्यों का (%)	
	अभिभावक	शिक्षक
क्या आप पी.टी.ए. के अस्तित्व के बारे में जानते हैं?	24.58	55.32
पी.टी.ए. में आप अपनी सदस्यता के बारे में जानते हैं?	32.20	29.79
क्या आप स्कूल योजना के बारे में जानते हैं?	10.17	12.77
क्या आप स्कूल नियोजन में भाग लेते हैं?	2.54	10.64
क्या पी.टी.ए. के सदस्य के रूप में अपनी भूमिकाओं के बारे में जानते हैं?	27.97	31.91
क्या पी.टी.ए. की भूमिका पर आपने कोई प्रशिक्षण प्राप्त किया है?	11.56	63.83
क्या आप स्कूल के वित्तीय अनुदान के बारे में जानते हैं?	0.00	17.02
क्या स्कूल में मिड-डे मील योजना है	100.00	95.74

स्रोत: लेखक का क्षेत्र सर्वेक्षण

उनकी भूमिका और जिम्मेदारियों के प्रति उन्मुख बनाना चाहिए। (आंध्र प्रदेश सरकार, 1998, पृ. 12.13) यह अधिनियम स्कूल प्रधानाध्यापक का समर्थन करता है। यहाँ यह बिंदु कि आदिवासी गांवों में पी.टी.ए. के सदस्यों के रूप में उनकी भूमिका के बारे में जागरूकता नहीं होने की स्थिति एक प्रमुख चिन्ता का विषय है और गंभीर मसला भी है। मंडल शिक्षा अधिकारी को इस पर कार्य करना होगा और पी.टी.ए. के गठन के रूप में और समुदाय के सदस्यों को विद्यालय से संबंधित गतिविधियों में शामिल करने के लिये सभी आदिवासी गांवों में आवश्यक उन्मुखीकरण प्रदान करने की जिम्मेदारी लेनी

चाहिए। अधिनियम स्पष्ट रूप से स्कूल के विकास के विभिन्न प्रयोजनों के लिये इन निधियों के उपयोग के लिये स्कूल फंड का निर्माण, स्कूल निधि खातों के रख-रखाव, स्कूल बजट की तैयारी और समुदाय/अभिभावक सदस्यों में से ज़्यादातर की भागीदारी (आंध्र प्रदेश सरकार, 1998, पृ. 15-17) के बारे में बताता है। क्षेत्र सर्वेक्षण बताते हैं कि पी.टी.ए. में माता-पिता के सदस्यों में से कोई भी स्कूल धनराशि के वित्तीय उपयोग के बारे में नहीं जानता है। यहाँ तक कि शिक्षक सदस्यों के मामले में, केवल 17.02% इन वित्तीय प्रक्रियाओं के बारे में जानते हैं। स्कूल प्रबंधन समिति के एक ऐसे ही अध्ययन में यह पता चला कि एस.एम.सी. में समुदाय के सदस्यों को और न ही शिक्षकों को स्कूल के वित्तीय संसाधनों का पूरी तरह से पता था। (श्रीनिवास राव, पृ. 64)। जैसा कि गोरले प्रभाकर, वाई. रामावरम मंडल के मेदालकोण्डा गांव में पी.टी.ए. के एक शिक्षक सदस्य कहते हैं, ''मैं इस स्कूल के कोई वित्तीय अनुदान के बारे में नहीं जानता हूँ। पिछले तीन महीनों से वेतन का भुगतान मुझे नहीं किया गया है। हम ''एक अस्थायी समुदाय शेड में इन बच्चों के लिए कक्षाएं चलाते हैं। समुदाय को स्कूल के वित्तीय लेने-देन का हिस्सा बनाया जाना चाहिए क्योंकि प्रमुख नीतिगत आदर्श पूरी तरह से आदिवासी क्षेत्रों में उपेक्षित रहा है।

वाई. रामावरम मंडल के सिंधुवाडा गांव में पी.टी.ए. में बंथला चंद्रमा, पी.टी.ए. के अभिभावक सदस्य ने कहा, ''मैं मध्याह्न भोजन में राशन के बारे में शिक्षकों से पूछता हूँ। इस तथ्य से पता चलता है कि भोजन एक तत्काल जरूरत है जो आदिवासियों के लिये सर्वोच्च प्राथमिकता है और वे सकारात्मक प्रतिक्रिया देते हैं। ट्रेज और गोयल (2003, पृ. 4675) ने अपने अध्ययनों में इसी तरह के निष्कर्ष का खुलासा करते हुये पाया कि भारत के अन्य भागों की अपेक्षा आदिवासी क्षेत्रों में अधिक सफल रहा है। यह भी खुलासा हुआ कि सक्रिय समुदाय निगरानी और सामान्य जागरूकता किसी भी कार्यक्रम को सफल बना देता है। (सिन्हा, 2008, पृ. 61)।

फिर भी, पी.टी.ए. के सदस्यों के रूप में उनकी भूमिका के बारे में जानने वाले माता-पिता के 27.97 प्रतिशत में से 16.95 प्रतिशत ने बताया कि उनकी भूमिका स्कूल में मध्याह्न भोजन निगरानी तक ही है। (तालिका 2)। क्रोथेम लक्ष्मी, मरेदुम्मिली मंडल के अगावलासा गांव अभिभावक पी.टी.ए. सदस्य ने बताया, ''स्कूल में भोजन के समय के दौरान, मैं जाकर देखती हूँ कि बच्चे स्कूल में क्या भोजन ले रहे हैं। आमतौर पर भी भोजन के बारे में महाराज और बच्चों से चर्चा करती हूँ। हालांकि, एक भी शिक्षक

तालिका-2

अपनी भूमिका के संबंध में पी.टी.ए. सदस्यों की जागरूकता

भूमिका	**पी.टी.ए. सदस्यों का जागरूकता (%)**	
	अभिभावक	**शिक्षक**
ड्राप आउट बच्चों की लामबंदी	2.55	14.89
स्कूल में स्कूल उम्र प्राप्त करने वाले बच्चों का नामांकन	8.47	34.04
मध्याह्न भोजन कार्यक्रम का निरीक्षण	16.95	0.00
पी.टी.ए. बैठकों का आयोजन तथा भागीदारी	0.00	17.03
पता नहीं	72.03	34.04
योग	100.00	100.00

स्रोत: लेखक क्षेत्र सर्वेक्षण

उत्तरदाता मध्याह्न भोजन निगरानी को अपनी प्राथमिकता नहीं बताया। उनके अनुसार स्कूल की उम्र प्राप्त करने वाले बच्चों का नामांकन (34.05 प्रतिशत), पी.टी.ए. बैठकों का आयोजन और उनमें भागीदारी (14.89 प्रतिशत) तथा ड्रॉप-आउट बच्चों की लामबंदी उनकी प्राथमिकताओं की सूची में है। (तालिका-2)

भागीदारी

माता-पिता के उत्तरदाताओं में से आधे से अधिक (53.9%) ने कहा कि वे अपने कार्यकाल के दौरान स्कूल की गतिविधियों में भाग नहीं लिया। जबकि शिक्षकों के मामले में यह (38.30%) था। भारत के नियंत्रक और महालेखा परीक्षा (सी.ए.जी.) की रिपोर्ट दृढ़ता से पी.टी.ए. को मज़बूत बनाने की सिफारिश करता है, और इसी तरह के निष्कर्ष की पहचान करते हुये बताता है कि आंध्र प्रदेश में पी.टी.ए. की कार्यात्मक स्थिति केवल 29% है। (सी.ए.जी. 2001, पृ. 85)। जांच रिपोर्ट पीटीए संस्था के महत्व को मानते हुये, शिक्षकों और माता-पिता के बीच शायद ही बातचीत पर अपने निष्कर्षों को उद्धृत करती है।

सर्वेक्षण स्कूलों में से पांच में से एक स्कूल में पी.टी.ए. था और जो पी.टी.ए. व्याप्त था वह शायद ही कभी अपनी औपचारिकताओं से आगे हो। कुछ तो केवल 26 जनवरी और 15 अगस्त पर केवल संक्षिप्त समारोह या जलपान के लिये ही मिलते थे, जो कि स्कूलों की पहले की ही परंपरा के अनुरूप था जहाँ माता-पिता को इन अवसरों पर समारोह में भाग लेने के लिए बुलाया जाता है।

जाँच के अध्ययन में इस निष्कर्ष के एक से अधिक दशक के बाद भी आदिवासी क्षेत्रों में अभी तक यह प्रचलित है। मौजूदा कार्यकाल के दौरान उत्तरदाताओं से पूछा गया कि पी.टी.ए. सदस्य के रूप में किस प्रकार स्कूल की गतिविधियों में भाग ले रहे थे। यहाँ यह दिलचस्प है कि कुछ उत्तरदाताओं ने कहा कि हमें यह नहीं पता कि पी.टी.ए. की सदस्यता के रूप में उनसे गतिविधियों में भी भाग लेने की अपेक्षा की जाती है। यह इंगित करता है कि चुनिंदा मामलों में उत्तरदाताओं की जागरूकता उनकी भागीदारी को प्रभावित नहीं करती है। मुरला अच्यम्मा, मरेदुमिली मंडल के गांव गुपेनगण्डी गांव में पी.टी.ए. सदस्य ने कहा ''अपने हित के बाहर जब भी हम गांववाले मिलते हैं तो मैं उनसे बच्चों को स्कूल भेजने के लिये कहती हूँ। मैं स्कूल जाकर शिक्षक से मिलती हूँ और उनसे अपने बच्चे की प्रगति के बारे में जानने की कोशिश करती हूँ। उपरोक्त टिप्पणी से यह पता चलता है कि कुछ मामलों में उत्तरदाताओं की जागरूकता में कमी उनकी भागीदारी को प्रभावित करती है। हालांकि नीतिगत दृष्टि से, सदस्यों की जागरूकता आवश्यक है। इन समुदाय के बीच स्कूल गतिविधियों में भाग लेने के लिये दिलचस्पी का सृजन उन्हें ''प्राथमिक प्रशासनिक तथा वित्तीय उत्तरदायित्वों'' को प्रदान करने से होगा। (अफरीदी 2005, पृ. 1532) तथा उन्हें विद्यालय प्रबंधन में अधिक ठोस निर्णय लेने की शक्ति प्रदान करनी होगी। (प्रोन; 1999, पृ. 67)।

भागीदारी के अंदर, तालिका-3 में दिये गये छह भागीदारी संकेतकों में से दोपहर का भोजन कार्यक्रम की निगरानी ही अभिभावकों की प्राथमिकता है (20.34%)। यहां यह स्पष्ट है कि 'भोजन' भागीदारी में सबसे अहम कारक है। यह तथ्य, जैसा कि इस पत्र में पहले भी उल्लेखित किया जा चुका है कि भोजन और शिक्षा का आदिवासी क्षेत्रों में अंत: संबंध बहुत गहरा है। आदिवासी क्षेत्रों में यह सपना इस प्रकार व्यक्त हो सकता है, ''आप मेरे बच्चे का भोजन सुनिश्चित करें और मैं उसका/उसकी शिक्षा सुनिश्चित करूँगा''। पहले के अध्ययन बताते हैं कि छात्र नामांकन और विद्यालय धारण सफल

मध्याह्न भोजन कार्यक्रम के निर्भर कारक रहे हैं। (अफ़रीदी 2005; ड्रेज एंड गोयल 2003; जैन एंड शाह 2005; कॉक, 2004; खेरा, 2006; राजन एंड जयकुमार 1992; रानी सी. एंड शर्मा, 2008; विश्वनाथन, 2006)।

शिक्षक सदस्यों के लिये, उदाहरण के तौर पर भागीदारी में उनकी प्राथमिकता बुनियादी सुविधाओं को जुटाने में होती है (19.15%), तथा मध्याह्न भोजन कार्यक्रम की प्राथमिकता (4.26%) सबसे कम है। (तालिका-3)। उन्होंने कुछ उदाहरण दिये जहाँ

तालिका-3

पीटीए सदस्य, माता-पिता तथा शिक्षक, जिन्होंने कहा कि उन्होंने स्कूल गतिविधियों में उनके कार्यकाल के दौरान भाग लिया/नहीं लिया

भागीदारी का क्षेत्र	**माता-पिता सदस्य (%)**
भाग नहीं लिया	53.39
दोपहर का भोजन कार्यक्रम का निरीक्षण	20.34
स्कूल में नामांकित ड्राप-आउट बच्चे	12.71
स्कूल में गतिविधियों की निगरानी	5.08
स्कूल विकास गतिविधियों में भाग लिया	4.24
स्कूल बैठकों में भाग लिया	3.39
स्कूल शिक्षकों की उपस्थिति की निगरानी	0.85
अध्यापक सदस्यों की भागीदारी	
भाग नहीं लिया	38.30
स्कूल के लिये आधारभूत सुविधाएं जुटाई	19.15
अभिभावकों तथा बच्चों के बीच जागरूकता जगाई	14.89
ड्राप-आउट बच्चों का स्कूल नामांकन	8.51
अभिभावक बैठकों का आयोजन	8.51
समुदाय के साथ मिलकर कार्य	6.38
दोपहर का भोजन कार्यक्रम में भागीदारी	4.26

वह संबंधित विभाग से साधनों को जुटाने के लिये निरंतर प्रयास कर रहे हैं। यह कोई आश्चर्य नहीं है कि मरेदुमितली मंडल के कुछ शिक्षकों, जो सामाजिक दृष्टिकोण रखते हैं, ने कुछ स्कूलों को गोद लिया और अपने वेतन में से कुछ भाग स्कूल के विकास में लगा रहे हैं जिससे कि गांव में आदिवासी समाज साक्षर हो सके। गंगावरम मंडल के एक पुरुष शिक्षक ने आगे आकर यह बताया कि वह मंडल शिक्षा अधिकारी से कई बार मिलकर गांव के स्कूल के लिये दो मेज, कुछ कुर्सियां तथा बच्चों के लिये खेल का सामान उपलब्ध कराया। आदिवासी क्षेत्रों में काम करते हुये अपने स्कूलों के लिये बुनियादी सुविधाओं को जुटाने में शिक्षकों की भागीदारी उनके सकारात्मक प्रेरणा का स्तर और प्रतिबद्धता को दर्शाता है। जैसा कि किंगडन और मुज़ामिल ने अपने पत्र में तर्क दिया है कि यह एक सकारात्मक संकेत है और स्कूल में छात्रों के नामांकन को बढ़ा सकता है। (2001, पृ. 3184)

यह स्पष्ट है कि 12.71 अभिभावक सदस्यों ने नामांकित ड्राप-आउट बच्चों को स्कूल में दाखिला करवाया, जबकि शिक्षकों के संबंध में यह 8.51% रही (तालिका-3)। अभिभावकों और शिक्षकों का भागीदारी स्तर कम हो सकता है, लेकिन स्कूल में ड्राप-आउट बच्चों का दाखिला करवाने में माता-पिता का प्रयास उच्च स्तर पर रहा है। यह पाठकों का ध्यान आकर्षित करता है कि अभिभावक जो बच्चों की शिक्षा में मुख्य हितधारक हैं, स्कूल में ड्राप-आउट बच्चों का उनके द्वारा दाखिला एक सकारात्मक संकेत हैं। हालांकि भागीदारी का निम्न स्तर कम प्रतिशत के संदर्भ में चिंता का विषय है।

अन्य संकेतक जहाँ 14.89% शिक्षकों ने कहा कि वह अभिभावकों और बच्चों के बीच लगातार स्कूल में भागीदारी को बढ़ाने के लिये उन्हें संवेदनशील बना रहे हैं। अभिभावकों और छात्रों के बीच अध्यापकों का संबंध स्कूल की गरिमा और सम्मान बढ़ाता है, जैसे कि प्रोब सर्वेक्षण के एक उदाहरण से प्रस्तुत होता है।

गांव में एक ऐसा छोटा सा प्राथमिक विद्यालय है जहाँ केवल एक युवा आदिवासी शिक्षक है जिसका नाम सेम है। जब वह आठ साल पहले बसेर आया था तो स्कूल में केवल 5 से 6 बच्चे थे और कक्षाएं केवल एक वृक्ष के नीचे लगती थीं। अब अधिकांश युवा बच्चे स्कूल जा रहे हैं। इस सुधार के लिये बहुत हद तक सेम की मेहनत है, उसने धैर्यपूर्वक माता-पिता के साथ तालमेल बनाया और बच्चों को स्कूल भेजने के लिये राजी कर लिया। वह एक समर्पित शिक्षक है, और स्कूल जीवंत और खुशनुमा लग रहा है (प्रोब, 1999 पृ. 53)।

यह अच्छी तरह से व्यक्त है कि केवल शिक्षक प्रतिबद्धता और उनका नियमित तालमेल समुदाय के साथ एकजुटता रखेगा। इन गुणों के साथ काम करने वाले शिक्षकों को आदिवासी बस्तियों में काम करने के लिये और अधिक आवश्यकता है। जैसे कि तालिका-3 में स्पष्ट है कि सीमित संख्या में शिक्षक इस कार्य में प्रतिबद्ध लग रहे हैं। केवल 0.85% माता-पिताओं ने कहा कि वे शिक्षकों की उपस्थिति का निरीक्षण रखते हैं (तालिका-3)। स्कूल में स्वस्थ वातावरण बनाये रखने के लिए शिक्षकों और अभिभावकों का एक-दूसरे पर नज़र रखना उचित नहीं हो सकता है। हालांकि दोनों पर नज़र बनाये रखना, स्कूल को निश्चित तौर पर गरिमा प्रदान करेगा और परिणाम स्वरूप आदिवासी समुदाय को समाज में मुख्यधारा में लाने में मदद करेगा।

समापन

आदिवासी क्षेत्रों में अपने बच्चों की शिक्षा को बढ़ावा देने में पीटीए के सदस्यों की भागीदारी काफी हद तक उपेक्षित है। संकेतकों के प्रति जागरूकता जैसे पीटीए का अस्तित्व, उनकी भूमिका तथा दायित्व, पीटीए में उनकी भागीदारी और पीटीए की संरचना स्पष्ट रूप से इन तथ्यों को प्रस्तुत करती हैं। हालांकि दोपहर के भोजन कार्यक्रम में अभिभावकों की भागीदारी और स्कूल के लिये संरचनाओं की लामबंदी हेतु शिक्षकों का प्रयास कुछ ऐसे सकारात्मक प्रयास हैं जो सामुदायिक भागीदारी को बढ़ावा देते हैं। मीडिया के साथ बातचीत करते हुये मा.सं.वि. मंत्री, श्री कपिल सिब्बल ने कहा कि ''समुदाय को बच्चों के नि:शुल्क तथा अनिवार्य शिक्षा अधिनियम, 2009 के प्रावधानों को लागू करने के लिये स्वयं ही इसे सुनिश्चित करना होगा' तथा 'स्कूल समुदाय द्वारा प्रबंधित होना चाहिए। यह समुदाय को शिक्षा का अधिकार अधिनियम को 6 से 14 वर्ष की आयु वर्ग के बच्चों को सामुदायिक भागीदारी के माध्यम से सुनिश्चित कराने के लिये मदद प्रदान करेगा।

संदर्भ ग्रंथ

अफरीदी, फरजाना (2005): ''मिड डे मील इन टू स्टेट्स: कम्पेयरिंग द फाइनेंनसियल एंड इंस्टीट्यूनल आग्रेनाइजेशन आफ द प्रोग्राम'', *इकोनोमिक एंड फाइनेंसियल वीकली,* 40 (15), पीपी. 1528-34

अलाबी, माइकेल (1998): ''सिफ्टिंग कल्टीवेशन'', *अ डिक्शनरी आफ प्लांट साइंसेज,* व्यूड आन 27 जुलाई 2010 फ्राम encyclopedia.com (heep://www.encyclopedia.com/doc/107-shiftingcultivation.html)

बनर्जी, ए., आर. बनर्जी, ई. डूफ्लो, आर. ग्लेनरस्टर, डी. केन्नीस्टन, एस. खेमनी एंड एम. शॉटलेंड (2007): ''कैन इन्फॉरमेशन कम्पेन रेज अवेयरनैस एंड लोकल पार्टीसीपेशन इन प्राइमरी एजुकेशन?'' *इकोनोमिक एंड पॉलीटिकल वीकली,* 42(15), पीपी. 1365–1372.

सेन्टर फार चाइल्ड एंड लॉ: *स्कूल डवलपमेंट एंड मॉनीटरिंग कमीटी: रिसर्च स्टडी,* (बंगलौर: पॉलिसी प्लानिंग यूनिट), व्यूड ऑन 24 जुलाई 2010. (http://www.schooleducation.kar.nic.in/SSA/pdfdocs/SDMCStudyReport.2004.pdf)

कम्पट्रोलर एंड ऑडीटर जनरल आफ इंडिया (2001): ''मिनिस्ट्री ऑफ ह्यूमन रिसर्च डवलपमेंट'' इन *रिपोर्ट आफ द कैग आफ द यूनियन गर्वनमेंट* व्यूड आन 9 अगस्त 2010 (http://cag.gov.in/html/reports/civil/2001.book3/chapter2.pdf

ड्रेज, जे. एंड ए. गोयल (2003): ''फ्यूचर आफ मिड-डे मील'', *इकोनोमिक एंड पॉलीटिकल वीकली,* 38(44), 4673–83.

दत्ता, एस.के. एंड के.जे. विरगो (1998): ''टूवार्ड्स ससटेनेबल वाटरसेड डवलपमेंट थ्रू पीपुल पार्टीसिपेशन: लेशन फ्राम द लेजर हिमालया, उत्तर प्रदेश, इंडिया'', *माउंटेन रिसर्च एंड डवलपमेंट,* 18(3), पीपी. 213–33

जीओएपी (1998): *आन्ध्र प्रदेश स्कूल एजुकेशन (कम्युनिटी पाटीसिपेशन) एक्ट 1998.* हैदराबाद: डिपार्टमेंट आफ एजुकेशन

जीओएपी (2004): *सेन्सस आफ इंडिया 2001–आन्ध्र प्रदेश: अ प्रोफाइल आफ द डिस्ट्रिक्ट ईस्ट गोदावरी.* हैदराबाद: डायरेक्टर आफ सेन्सस आपरेशन्स

जीओएपी (2006): जी.ओ.एम. नं. 95 डेटेड 02/12/2006. हैदराबाद: डिपार्टमेंट आफ स्कूल एजुकेशन.

जीओएपी (2007): *अ नोट ऑन इंटेग्रेटेड ट्राइबल डवलपमेंट एजेंसी (आईटीडीए) इन ईस्ट गोदावरी डिस्ट्रिक्ट.* रामपचोदावरम: इंटेग्रेटेड ट्राइबल डवलपमेंट एजेंसी.

जीओएपी (1986): *प्रोग्राम आफ एक्शन: नेशनल पॉलिसी आन एजुकेशन 1986:* नई दिल्ली: मिनिस्टरी आफ ह्यूमन रिर्सोसेज डवलपमेंट.

जीओएपी (2009ए): *द राइट आफ चिल्ड्रेन टू फ्री एंड कम्पलसरी एजुकेश्न एक्ट, 2009,* नई दिल्ली: मिनिस्टरी आफ लॉ एंड सोशल जस्टिस.

जीओएपी (2009बी): *मॉडल रूल्स अंडर द राइट आफ चिल्ड्रन टू फ्री एंड कम्पलसरी एजुकेशन एक्ट, 2009.ए 26 मार्च 2010* (http://education.nic.in/Elementary/RTI_Model_Rules.pdf)

गोविंदा, आर. एंड रश्मि दीवान (2003): ''इंट्रोडक्शन: इमरजिंग इश्यूज एंड प्रैक्टिसेज'', इन ऑथर (एड.) *कम्युनिटी पारटीसीपेशन एंड इम्पावरमेंट इन प्राइमरी एजुकेशन*. नई दिल्ली: सेज, पीपी. 11–30ण

हरदिया, रर्डोल्फ सी. (1995): ''ट्राइबल एजुकेशन फार डवलपमेंट: नीड फार` लिबरेटिव पेडेगोगी फार सोशल ट्रांसफॉरमेशन''. *इकोनोमिक एंड पालीटिकल वीकली,* 30 (16), पीपी. 891–97.

जैन, जे. एंड एम. शाह (2005): ''अंत्योदया अन्न योजना एंड मिड-डे मील्स इन एम.पी., *इकोनोमिक एंड पॉलीटिकल वीकली,* 40(48), पीपी. 5076–88ण

जेनिंग, राय (2000): पारटीसीपेटरी डवलपमेंट एज न्यू पैराडिज्म: द ट्रांजीशन आफ डवलपमेंट प्रोफेशनलिज्म'', प्रेपेयर्ड फार द *कम्युनिटी बेस्ड रैन्टेग्रेशन एंड रिहाबिलिटेशन इन पोस्ट-कॉनफ्लिक्ट सैटिंग कान्फ्रेंस,* वाशिंगटन डीसी, 20 जनवरी 2010. (http://www.usaid.gov/our_work/cross-cutting_programs/transition_initiatives/pubs/ptdv1000.pdf)

कॉक, शक्ति (2004): ''मैग्नीट्यूड एंड प्रोफाइल आफ चाइल्ड लेबर इन द 1990: इविडेंस फ्राम द एनएसएस डाटा'', *सोशल सांइटिस्ट,* 32(1 एंड 2) पीपी. 43–73. 13 अगस्त 2010. (http://www.jstor.org/stable/pdfplus/3518327.pdf)

खेरा, रीतिका (2006): ''मिड-डे मील इन प्राइमरी स्कूल: अचीवमेंट एंड चैलेज'', *इकोनोमिक एंड पालीटिकल वीकली,* 41(46), पीपी. 4742–50.

किंगडन, गीता गांधी एंड एम. मोज़मिल (2001): ''ए पालीटिकल इकोनोमिक आफ एजुकेशन इन इंडिया-।।: द केस आफ यूपी'', *इकोनोमिक एंड पॉलीटिकल वीकली,* 41(46), पीपी. 3178–85.

पांडे, पी., एस. गोयल एंड वी. सुन्दररामन (2010): ''पब्लिक पार्टीसिपेशन, टीचर अकाउन्टाबिलिटी एंड स्कूल आउटकम्स इन देअर स्टेट्स'', *इकोनोमिक एंड पॉलीटिकल वीकली,* 45(24), पीपी. 75–83.

पॉल, सेम्यूल (1987): ''कम्युनिटी पार्टीसिपेशन इन डवलपमेंट प्रोजेक्ट : द वर्ल्ड बैंक एक्सपीरियन्स'', इन *रीडिंग इन कम्युनिटी पार्टीसिपेशन,* वाशिंगटन, डी.सी.: इकोनोमिक डवलपमेंट इंस्टीट्यूट, सीटेड बाई एम. बम्बरजर (1988): ''द रोल आफ कम्युनिटी पार्टीसिपेशन इन डवलपमेंट प्लानिंग एंड प्रोजेक्ट मेंनेजमेंट: रिपोर्ट आफ अ वर्कशॉप ऑन कम्युनिटी पार्टीसीपेशन'', वाशिंगटन डी.सी: इकोनोमिक डवलपमेंट इंस्टीट्यूट आफ द वर्ल्ड बैंक आन 20 अगस्त, 2010. (http://www.wdsworldbank-org/external/default/WDSContentServer/WDSP/IB/2000/05/31/000178830_98101902091596/Rendered/PDF/multi-page.pdf)

पीआरओबीई (1999): *पब्लिक रिपोर्ट आन बेसिक एजुकेशन इन इंडिया.* नई दिल्ली: आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.

राजन एस. इरूदया एंड ए. जयकुमार (1992): ''इम्पैक्ट आफ नून मील प्रोग्राम आन प्राइमरी एजुकेशन: एन एक्सप्लोरेटरी स्टडी इन तमिलनाडु'', *इकोनोमिक एंड पॉलीटिकल वीकली,* 27(43 एंड 44), पीपी. 2372-80.

रामचन्द्रन, विमला (2001) ''कम्युनिटी पार्टीसीपेशन इन प्राइमरी एजुकेशन: इनोवेशन इन राजस्थान *इकोनोमिक एंड पॉलीटिकल वीकली,* 36(25), पीपी. 2244-50.

रानी सी, ए एंड एन.के. शर्मा (2008): ''एन इम्पीरिकल स्टडी आफ द मिड-डे मील प्रोग्राम इन खुर्दा, उड़ीसा'', *इकोनोमिक एंड पॉलीटिकल वीकली,* 43(25), पीपी. 46-55.

शेखर, टी.वी. (2003): ''सैन्सीटाइजिंग ग्रास रूट्स लीडरशिप आन हैल्थ इश्यूज: एक्सपीरियन्स आन पायलट टीवी प्रोजैक्ट'', *इकोनोमिक एंड पॉलीटिकल वीकली,* 38(46), पीपी. 4873-79.

सिन्हा, दीपा (2008): ''सोशल ऑडिट एंड मिड-डे मील स्कीम इन आन्ध्र प्रदेश, *इकोनोमिक एंड पॉलीटिकल वीकली,* 43(44), पीपी. 57-61.

श्रीनिवास राव, वसंत (2009): ''लक आफ कम्युनिटी पार्टीसिपेशन इन द सर्व शिक्षा अभियान: ए केस स्टडी'', *इकोनोमिक एंड पॉलीटिकल वीकली,* 44(8), पीपी. 61-64.

स्वीफ्ट-मोरगन, जेनीफर (2006) ''ह्वट कम्युनिटी पार्टीसिपेशन इन स्कूलिंग मीन्स: इनसाइट्स फ्राम सर्दन इथोपिया'', *हावर्ड एजुकेशन रिब्यू,* 76(3), पीपी. 339-68.

द *हिंदू,* कम्युनिटी मस्ट डू इट्स पार्ट फार राइट टू एजुकेशन'', 25 मरर्च 2010. ''इज राइट टू एजुकेशन ए स्टैप टूवार्ड्स एंन्डिग इलिटिज्म इन एजुकेशन?'', *वी द पीपुल* प्रोग्राम इन एनडीटीवी विद कपिल सिब्बल, 4 अप्रैल 2010 एट 10:00 टू 11:00 पीएम (http://www.ndtc.com/news/videos/video_player.php?id=1216208)

यूनेस्को (2000): ''द डकार फ्रेमवर्क फार एक्शन'', *एजुकेशन फार ऑल: मीटिंग अवर क्लैक्टिव कमीटमेंट्स.* पेरिस, 20 जनवरी 2010. (http://unesdoc.unesco.org/images/0012/001211/121147E.pdf

विश्वनाथन, बृन्दा (2006): ''एक्सैस टू न्यूट्रीशियस मील प्रोग्राम: इवीडेंन्स फ्राम 1999-2000 एनएसएस डाटा'', *इकोनोमिक एंड पॉलीटिकल वीकली,* 41(6), पीपी. 497-505.

(जर्नल आफ एजुकेशनल प्लानिंग एंड एडमिनिस्ट्रेशन,
वर्ष 26, अंक-4, अक्तूबर 2012 से साभार)

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 20, अंक 1, अप्रैल 2013

प्राचीन भारत में उच्च शिक्षा की विशिष्ट संस्थाएं और उनका प्रबंधन

शोभारानी दुबे*

भारतीय शिक्षा का इतिहास हजारों वर्ष पुराना है। यहां विभिन्न कालों में विभिन्न प्रकार की शिक्षण संस्थाओं का अस्तित्व रहा है। प्रागैतिहासिक काल से लगभग 100 ईस्वी पूर्व तक सभी प्रकार की व्यवसायिक और साहित्यिक शिक्षा का स्त्रोत परिवार रहा है। शिक्षा के क्षेत्र में जैसे-जैसे उलझने बढ़ती गईं, विशेषाध्ययन की ओर लोगों की रूचि बढने लगी। कालान्तर में किसी समय विशेषाध्ययन करवाकर विषय की क्लिष्टता समाप्त करने के लिये पण्डितों ने अपनी पाठशालायें खोल लीं।[1] ईसा की प्रारंभिक शताब्दियों तक ये पाठशालाऐं प्रभावशाली बनी रही। इसी काल के आस-पास बौद्ध विहारों में सार्वजनिक शिक्षण संस्थाओं का जन्म हुआ। इसके पश्चात हिन्दुओं ने भी बौद्धों का अनुकरण करके अपने मंदिरों में पाठशालाऐं खोलीं। शिक्षण संस्थाओं का जन्म सम्पूर्ण भारत में हुआ। ये संस्थायें या तो राज्य की राजधानियां होती थीं अथवा प्रसिद्ध धार्मिक तीर्थ। राजा और सामन्तों के विद्यानुरागी होने के कारण विद्वान ब्राम्हणों का उनकी सभाओं की ओर आकर्षित होना स्वाभाविक था। इन्ही परिस्थितियों में तक्षशिला, पाटलिपुत्र, कन्नौज, मिथिला और धारा को उत्तर भारत में, तो मालखेड़, कल्याणी व तंजौर को दक्षिण भारत का प्रसिद्ध विद्या केन्द्र बनकर उभरने का अवसर प्राप्त हुआ। तीर्थ भी अति प्राचीन काल से शिक्षा का प्रमुख केन्द्र रहे हैं। यहाँ पर शिक्षा केन्द्र होने के कारण आचार्यों को तीर्थ यात्रियों से कुछ अतिरिक्त आय अर्जित हो जाती थी। काशी, कांची, कर्नाटक, नासिक आदि शिक्षा के केन्द्र इस कारण ही प्रसिद्धी को प्राप्त हुये।[2] धीरे-धीरे बौद्ध, मठ और बिहार ब्राह्मणों के गुरूकुल के समान विकसित होने लगे, जो कालान्तर में बौद्ध शिक्षा के प्रमुख केन्द्र बन गये।[3] राजगृह, वैशाली, श्रावस्ती, कपिलवस्तु आदि नगरों में कई प्रसिद्ध बिहारों और मठों का उत्कर्ष हुआ, यही कालान्तर में बौद्ध शिक्षा के प्रमुख केन्द्र के रूप में विकसित हुये।[4] प्राचीन काल

* सहायक प्राध्यापक, जे.पी. कॉलेज ऑफ एजुकेशन, जे.पी. नगर, रीवा (म.प्र.)

में विकसित हुये अनेक शिक्षा केन्द्रों में से जो उच्च शिक्षा के विशिष्ट केन्द्र के रूप में विकसित हुये हैं उनका वर्णन निम्नानुसार किया जा रहा है–

तक्षशिला

तक्षशिला पाकिस्तान के रावलपिण्डी शहर के लगभग 35 कि.मी. की दूरी पर है। तक्षशिला विद्या और ज्ञान के क्षेत्र के रूप में प्रसिद्ध हुआ सबसे प्राचीन नगर था। सातवीं शताब्दी ईस्वी पूर्व में ही इसके प्रसिद्ध हो जाने के प्रमाण प्राप्त होते है। यह प्राचीन विद्या का केन्द्र गांन्धार प्रान्त की राजधानी था। रामायण में उल्लेख प्राप्त होता है कि भरत ने इसकी स्थापना की थी और अपने पुत्र तक्ष को इसका प्रशासन चलाने की जिम्मेदारी सौंपी थी।[5] अत: तक्ष के नाम पर ही इस स्थान का नाम तक्षशिला पड़ा। जनमेजय के द्वारा यहीं पर नागयज्ञ सम्पन्न कराये जाने का उल्लेख महाभारत में प्राप्त होता है।[6] महाकाव्यों के प्रमाणों से स्पष्ट है कि छठवीं–सातवीं शताब्दी ईस्वी पूर्व तक यह नगर विद्या का एक प्रमुख केन्द्र बनकर उभर चुका था। सम्पूर्ण भारत से विद्यार्थी आकर यहां पर शिक्षा ग्रहण करते थे। इन विद्यार्थियों में मुख्य रूप से वाराणसी, पाटिलपुत्र, राजगृह, मिथिला, उज्जयिनी आदि नगरों के होते थे।[7] ये यहां के ज्ञान की महत्वता से भिज्ञ होने के लिये आते थे।[8] जातकों से विदित होता है कि देश के विभिन्न स्थानों से छात्र वहाँ पहुचकर आचार्यों के सानिध्य में रहकर शिल्प का ज्ञान प्राप्त करते थे।

विद्याकेन्द्र के रूप में ख्याति :

ईस्वी पूर्व 600 में शिक्षा केन्द्र के रूप में तक्षशिला की ख्याति अतुलनीय रूप से संपूर्ण देश में फैल चुकी थी।[9] वहाँ वेदों के साथ हस्तिसूत्र, धनुर्वेद, आयुर्वेद एवं 18 शिल्पों की शिक्षा छात्रों को प्रदान की जाती थी।[10] महात्मा बुद्ध एवं मौर्यसम्राट बिम्बसार के समकालीन जीवन ने यही अध्ययन करने के उपरांत आयुर्वेद के महान विद्वान के रूप में ख्याति प्राप्त की। मौर्य सम्राट चन्द्रगुप्त, महान अर्थशास्त्री कौटिल्य, कोशल शासक प्रसेनजित, प्रसिद्ध वैद्य जीवक, वैयाकरणचार्य पाणिनि और पतंजलि आदि ने यहीं से शिक्षा ग्रहण कर अपने अपने क्षेत्र में ख्याति प्राप्त की।[11] तक्षशिला से ही आचार्य धौम्य के शिष्य उपमन्यु, आरूणि और वेद ने शिक्षा ग्रहण की।[12] उस काल में परदेश में रहना बहुत कठिन और संकटपूर्ण था, क्योंकि ऐसे उल्लेख मिलते हैं कि समावर्त्तन के पश्चात् अपने जीवन काल में ही पुत्रों को देखलेने की माता पिता परमेश्वर से कामना करते हैं।[13] इतनी दु:साध्यता के बावजूद यहाँ काशी[14], राजगृह,[15] मिथिला[16] और उज्जयिनी[17] जैसे दूरस्थ नगरों से

विद्यार्थी ज्ञानार्जन की आशा में आते थे। कुरू और कौशल के विद्यार्थी भी अध्ययनार्थ तक्षशिला की ओर गमन करते देखे जा सकते हैं।[18] द्विजो के सभी सदस्य एक साथ विद्याध्ययन करते थे।[19] ब्राम्हण के साथ क्षत्रियों के वेदाध्ययन करने के प्रमाण प्राप्त होते है, तो क्षत्रिय के साथ ब्राम्हण के धनुर्विद्या सीखने के भी प्रमाण उपलब्ध है।[20] सुतसोम जातक से विदित होता है कि धनुर्विद्या के एक विद्यालय में देश के विभिन्न भागों के 103 राजकुमार शिक्षा प्राप्त कर रहे थे।

संस्था का स्वरूप

हम आधुनिक काल के परिप्रेक्ष्य में यदि देखे तो उपलब्ध प्रमाणिक श्रोतों से यह स्पष्ट हो जाता है कि तक्षशिला में कोई महाविद्यालय अथवा विश्वविद्यालय नही था।[21] विभिन्न उल्लेखों से केवल यही प्रतीत होता है कि वहाँ पर लब्धप्रतिष्ठ शिक्षा-विशेषज्ञों की अधीनता में अलग-अलग शालाऐं थीं[22] जिनके चरणों में बैठकर अध्ययन करने की अभिलाषा मन में संजोयें उत्तर भारत के कोने-कोने से सैकडों विद्यार्थी आते थे।[23] आधुनिक काल के महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों से प्राध्यापकों के समान ये आचार्य किसी शिक्षण संस्था के सदस्य नही थे।[24] इस विषय पर इतिहासकारों पर मतैक्य है। परन्तु यहाँ के पाठ्यक्रम के सम्बंध में अल्लेकर कहते हैं कि निर्धारित पाठ्यक्रम का अनुसरण नहीं किया जाता था,[25] जबकि जयशंकर मिश्र का कहना है निर्धारित पाठ्यक्रम होता था।[26] आचार्य अपने उच्च कक्षा के विदग्ध शिष्यों से अध्यापन में सहायता लेता था, इस प्रकार वह स्वयं एक संस्था का कार्य करता था।[27] छात्र अपनी अभिरूचि के अनुसार ही विषय का चयन करते थे।[28] शिक्षा का प्रथम उद्देश्य था स्वान्त: सुख, न कि उपाधि की अभिलाषा।[29] इसलिये कोई परीक्षा नही होती थी और न ही किसी उपाधि का प्रमाणपत्र वितरित किया जाता था।[30]

संस्था का वित्त प्रबंधन या आय के श्रोत

किसी भी संस्था के सुचारू संचालन के लिये धन का प्रबंध प्राथमिक आवश्यकता है। तक्षशिला में शिक्षा शालाओं की सम्पूर्ण व्यवस्था का दायित्व आचार्य पर ही होता था। व्यय की व्यवस्था प्रत्येक विद्यालय का प्रधान स्थानीय जनता की सहायता एवं कुछेक धनी विद्यार्थियों की गुरू दक्षिणा से करता था।[31] गुरू दक्षिणा प्राय: एक सहस्त्र मुद्राओं से अधिक नही होती रही होगी।[32] योग्य और मेधावी छात्रों को शिक्षा प्रदान करने हेतु इन शिक्षा शालाओं को राजकीय सहायता प्रदान होती थी। वाराणसी और राजगृह के

राजपुरोहित-पुत्र और युवराजों के साथ जाने वाले ऐसे छात्रों को देखा जा सकता है।[33] स्पष्ट है कि इस काल में राज्य और समाज की ओर से प्रतिभाशाली निर्धन छात्रों को प्रत्येक संभव सहायता प्रदान करवायी जाती रही होगी।

छात्रों का आवास तथा भोज्य व्यवस्था

हम यह देख चुकें है कि प्रारंभिक शिक्षा ग्रहण कर चुकने के उपरान्त उच्च शिक्षा प्राप्त करने के निमित्त ही विद्यार्थी देश के कोने-कोने से तक्षशिला जाते थे।[34] जातकों के अनुसार ब्राह्मण एवं क्षत्रिय नवयुवक शिक्षा प्राप्त करने के उपयुक्त समझे जाते थे। हाथी गुम्फा लेख से भी इसी तथ्य की पुष्टि होती है। इसमें 15 वर्ष की अवस्था के उपरान्त खारवेल ने विद्यारम्भ कर सभी विषयों में[35] महारत प्राप्त की थी।

इन उद्धरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि शिक्षण संस्थाओं में प्रविष्ठ होते समय वे 15 व 16 वर्ष के होते थे। सामान्य रूप से वे अपने आचार्य के कुल में ही निवास करते थे।[36] सम्पन्न विद्यार्थी कभी-कभी प्रवेश के समय तो कभी शुल्क के साथ अपने भोजन व आवास का व्यय चुका देते थे।[37] कुछ धनी विद्यार्थियों जैसे काशी के राजकुमार ''जुन्ह'' अपने निवास के लिये स्वतंत्र भवनों की व्यवस्था कर लेते थे।[38] निर्धन विद्यार्थी जो शुल्क देने में असमर्थ थे, वो दिन में आचार्य की गृहस्थी का कार्य करते थे और रात्रि में स्वयं के लिये किये गये शिक्षा के विशेष उपबंधन का लाभ ग्रहण कर अध्ययन करते थे।[39] इस प्रकार हम देखते हैं कि धनी और निर्धन दोनों ही तरह के छात्र गुरू के समीप रह सकते थे।[40]

छात्र और उनकी जाति

शिक्षा प्रदान करने और शिक्षा प्राप्त करने में कोई भेदभाव नहीं किया जाता था।[41] इसका अर्थ यह हुआ कि शिक्षा प्रदान करते समय आचार्य विद्यर्थी की जाति को महत्व प्रदान नही करता था। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य सभी समान रूप से शिक्षा ग्रहण करते थे। आचार्य के यहाँ ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य के साथ-साथ मछली मारने वाले और छीपी (दर्जी) जैसे निम्न जाति के लोग भी शिक्षा ग्रहण करते थे।[42] यह उदाहरण उस काल में जाति व्यवस्था के लचीलेपन की ओर संकेत करता है।[43]

विद्यार्थियों की संख्या

जातकों के उद्धरण से ऐसा प्रतीत होता है कि कुछ आचार्यों के शिष्यों की संख्या 500 तक

थी।[44] परंतु यह वर्णन यथार्थ से भटका हुआ प्रतीत होता था। सुत सोम जातक में दी गई आचार्यों के छात्रों की संख्या वास्तविकता के पर्याप्त निकट प्रतीत होती है। इस जातक में एक विद्यालय में विश्वविख्यात आचार्य के देश के विभिन्न भागों से आए 103 राजकुमार शिष्य थे जो उनसे धनुर्विद्या की शिक्षा ले रहे थे।[45] इस आचार्य के अवश्य ही अनेक सहायक रहें होंगे, क्योंकि सामान्य रूप से एक आचार्य के चरणों मे 20 से अधिक ब्रह्मचारी नही होते थे।[46] आचार्य के चरणों में 20 से कम ब्रह्मचारी होने का कथन तक्षशिला में हुई खुदाईयों से भी प्रमाणित हो जाता है। क्योंकि वहाँ ऐसी कोई भी संरचना प्राप्त नही हुई है, जिसे छात्रावास अथवा व्याख्यानगृह कहा जा सके एवं जिनमें एक साथ बैठकर पाँच सौ विद्यार्थी अध्ययन कर सकें।[47]

अध्ययन के विषय

पूर्व में वर्णित किया जा चुका है कि तक्षशिला में उच्च शिक्षा की विभिन्न शाखाओं के कठिन विषयों के अध्ययनार्थ पूरे देश के विद्यार्थी पहुंचते थे। जीवक ने यहाँ आयुर्वेद एवं शल्य चिकित्सा की शिक्षा प्राप्त की तो काशी के दो राजकुमारों ने धनुर्वेद और हस्ति-शिक्षाशास्त्र की। वेदत्रयी, अष्टादश शिल्प, व्याकरण और दर्शन विषयों के विशेष अध्ययन के लिये तक्षशिला की ख्याति थी।[48] वहां वेदों के साथ हस्तिसूत्र, धनुर्वेद, आयुर्वेद एवं 18 शिल्पों की शिक्षा विद्यार्थियों को प्रदान की जाती थी।[49] 18 शिल्पों में आयुर्वेद, शल्य चिकित्सा, धनुर्विद्या तथा सम्बद्ध युद्धकला, ज्योतिष, भविष्यकथन, मुनीमी, व्यापार, कृषि, रथ-चालन, इन्द्रजाल, नागवशीकरण गुप्तनिधि-अन्वेषण, संगीत, नृत्य और चित्रकला की गणना होती थी।[50] विषयों का चयन करते समय किसी वर्ण विशेष का होना बाधक नही होता था।[51] क्षत्रिय भी ब्राह्मण के साथ वेद का अध्ययन करता था, जबकि ब्राह्मण, क्षत्रिय के साथ धनुर्विद्या में दक्षता प्राप्त करता था। जातक में उद्धरण आता है कि एक ब्राह्मण ने अपने पुत्र को तक्षशिला धनुर्विद्या की शिक्षा ग्रहण करने के लिये भेजा।[52] राजनीतिक उथल-पुथल और शिक्षा पर इसका प्रभाव छठवीं शताब्दी ईसवी पूर्व में पारसिकों, दूसरी शताब्दी ईसवी पूर्व में यवनों, प्रथम शताब्दी ईसवी पूर्व में शकों, प्रथम शताब्दी ईसवी पूर्व में कुशाणों तथा पांचवी शताब्दी ने हूणों ने तक्षशिला पर आक्रमण करके अधिकार कर लिया।[53] यहाँ के खण्डहरों के निरीक्षण करने पर विदित होता है कि यवन, शक और कुशाण काल में पुरानी बस्ती के विध्वंस के उपरान्त नया नगर बसा दिया गया था। बहुत संभव है कि

इन ध्वंसों के उपरान्त नगर की समृद्धि नष्ट हो गई होगी, इसके कारण शिक्षा व्यवस्था भी प्रभावित हुई होगी। परन्तु इन आक्रमणकारी शासकों ने तक्षशिला को प्रान्तीय राजधानी अवश्य बनाया था।[54] अत: यह विचार मस्तिष्क में सहज ही उद्भूत हो आता है कि युद्ध के संहार का प्रभाव अल्पकालिक ही रहता रहा होगा। इन आक्रमणों का प्रभाव यह हुआ कि भारतीय जन मानस एक नवीन ज्ञान विज्ञान के सम्पर्क में आया और उससे प्रभावित हुआ।[55] उत्कीर्ण लेखों से ज्ञात होता है कि पारसी शासन के परिणामस्वरूप राष्ट्रीय ब्राम्ही लिपि के स्थान पर विदेशी खरोष्टी लिपि का धीरे-धीरे प्रचार और यूनानी तक्षण कला, मुद्रा-निर्माण कला तथा दर्शन शास्त्र का प्रसार भारत में होने लगा।[56] यह भी संभव है कि कतिपय यवन राजाओं और सामन्तों की सभाओं में यवन नाटकों का मंचन होता रहा हो और कुछ भारतीय सोफोक्लीज एवं यूरेपेडीज की कृतियों को पढ़कर सराहते रहे हों।[57] परंतु तक्षशिला पर यूनानी प्रभाव गहरा नहीं था क्योंकि स्वयं यवन शासकों का अपनी मातृभूमि से सम्बंध विच्छेद हो गया था तथा अल्पकाल में ही इन विजेताओं ने विजितों की संस्कृति तथा धर्म अपना लिया।[58]

तक्षशिला का शिक्षा केन्द्र के रूप में विनाश

तक्षशिक्षा में शिक्षा सम्बंधी गतिविधियों की थोड़ी बहुत जानकारी हमें ईसा काल की प्रारंभिक शताब्दियों के अन्त तक प्राप्त होती है।[59] दो सौ पचास ईस्वी में कुशाष शासन के पतनोपरान्त तक्षशिला में अत्यंन्त बर्बर छोटे यूचियों का अधिकार हुआ। इनके अंधकारपूर्ण शासन काल में शिक्षा की बड़ी अवनति हुई होगी, क्योंकि 5वीं शताब्दी में भारत की यात्रा करने वाले चीनी यात्री फाह्यान ने तक्षशिला से सम्बंधित ऐसा कोई विवरण नही दिया है जिससे यह जाना जा सके कि वह उस समय शिक्षा और विद्या का प्रधान केन्द्र था।[60] 5वीं शताब्दी ईसवी के मध्य में हूणों ने भारत पर आक्रमण किया। उस समय तक छोटे यूचियों के विध्वंस से तक्षशिला का जो वैभव बचा था, उन्होंने उसे पूर्णत: समाप्त कर दिया।[61] 7वीं शताब्दी में जब ह्वेनत्सांग ने इस नगरी की यात्रा की, तब तक इसका सम्पूर्ण वैभव और महत्व समाप्त हो चुका था। कुमारलब्ध का प्रसिद्ध विहार जहाँ उस महान सौत्रांतिक विद्वान ने अपनी प्रसिद्ध व्याख्याएँ की थीं, नष्ट-भ्रष्ट हो चुका था।[62] शेष बौद्ध बिहारों की दशा वैसी ही थी। इस प्रकार हम देखते हैं कि हूणों ने शिक्षा की इस महान नगरी का प्राचीन वैभव सदा के लिये समाप्त कर दिया।

काशी

पूर्व वैदिक युग में काशी का वर्णन न तो तीर्थ और न ही विद्या के केन्द्र के रूप में मिलता है, क्योंकि उस काल तक वैदिक धर्म का पूर्वी उत्तर प्रदेश, बिहार एवं बंगाल तक प्रसार नहीं हुआ था।[63] काशी के नागरिकों ने इस नए धर्म को अपेक्षाकृत अनिच्छा से स्वीकार तो लिया, परंतु दीर्घ काल तक वो इसके प्रति श्रद्धावान नहीं बने रहे।[64] विद्या और शिक्षा के क्षेत्र में काशी का महत्व उत्तर वैदिक काल में बढ़ने लगा।[65] उपनिषद् काल तक तो यह नगरी आर्य सभ्यता और धर्म के शिक्षा केन्द्र के रूप में पर्याप्त प्रतिष्ठा को प्राप्त हो गई थी। अपनी ज्ञान गरिमा, प्रतिभा और विद्वता के लिये काशी नरेश अजातशत्रु पूरे देश में विख्यात था। उपनिषदों में उसका वर्णन एक महान दार्शनिक के रूप में हुआ।[66] उससे शिक्षा ग्रहण करने दूर देशों के विद्यार्थी आया करते थे।[67] वह मिथिला के राजा जनक को अपना आदर्श मानकर उन्हीं की भाँति आचरण करता हुआ विद्या को प्रोत्साहित करता था।[68] सुदीर्घ कााल तक तक्षशिला काशी से अधिक महत्वपूर्ण था, किन्तु कालान्तर में काशी की ओर देश-देशान्तर के विद्यार्थी आकर्षित होने लगे।[69] कोसिय तथा तित्तिर जातकों के अनुसार काशी के विख्यात आचार्य तीनों वेदों और 18 शिल्पों का अध्ययन करते थे, तथा अकित्त जातक से विदित होता है कि 16 वर्ष की आयु वाले विद्यार्थी अध्ययन के लिये काशी में उमड़ पड़ते थे।

जैन धर्म केन्द्र स्थली के रूप में

जैन धर्म के तेइसवें तीर्थकर पार्श्वनाथ स्वामी काशी के शासक अश्वसेन के पुत्र थे। इन्होंने ही सर्वप्रथम जैन धर्म की आचार संहिता का निर्माण किया। इनके द्वारा निर्मित इसी आचार संहिता ने भगवान महावीर को उस पर विचार करने के लिये मार्ग प्रशस्त किया। ऐसी स्थिति में काशी जैन धर्म और दर्शन के प्रधान केन्द्र के रूप में दिखाई पडती है।[70]

बौद्ध विद्या का केन्द्र

ईस्वी पूर्व सातवीं शताब्दी में काशी का उत्तर भारत में सम्भवत: सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान था। वैदिक दर्शन, ज्ञान, तर्क और शिक्षा में वह अग्रणी थी। इसलिये भगवान बुद्ध ने अपना धर्म चक्र-प्रवर्तन काशी में ही किया। उन्होंने अपने धर्म का प्रचार सर्वप्रथम यहाँ से इसलिये किया होगा ताकि उसका प्रभाव काशी के विद्वानों पर पड़ सके।[71] अशोक के संरक्षण में काशी के उपान्त्य में स्थित सारनाथ का बौद्ध बिहार शिक्षा का बड़ा प्रसिद्ध केन्द्र बन गया होगा।[72] अशोक ने यहाँ अनेक बौद्ध बिहारों और मठों

का निर्माण करवाया था। ह्वेनत्सांग ने जब सातवी शताब्दी में यहां की यात्रा कीं, तो उसने यहाँ के विहारों, चैत्यों, स्तूपों और भवनों को देखा। उसके अनुसार यहाँ अनेक मंजिलों वाले और लुभावने भवन थे।[73]

हिन्दू विद्या केन्द्र के रूप में

हिन्दू विद्या केन्द्र के रूप में काशी का यशोगान करने के लिये आवश्यक प्रमाणों की अनुपलब्धता है। केवल भविष्यपुराण में भविष्यवाणी के रूप में अंकित है कि भविष्य में काशी, पाण्डित्य का एक प्रसिद्ध केन्द्र होगी।[74] अन्य ग्रंथों में इसका उल्लेख एक धार्मिक तीर्थ के रूप में ही हुआ है। काशी में या अन्यत्र कहीं ऐसा लेख प्राप्त नहीं होता जिसमें काशी के किसी शिक्षण संस्था को किसी के द्वारा दान दिये जाने का उल्लेख प्राप्त होता हो। इससे यही प्रतीत होता है कि यहाँ कोई शिक्षण संस्था नहीं थी। व्यक्तिगत रूप से अध्यापन की पिछली परंपरा को यहाँ के पण्डितों ने बनाए रखा।[75] परंतु उनकी विद्वता की ख्याति भारत के प्रत्येक कोने में पहुंच रही थी। तभी तो शंकराचार्य जी जैसे विद्वानों और दार्शनिकों ने भी काशी आकर अपने सिद्धान्तों पर यहाँ के पण्डितों की सहमति प्राप्त करना आवश्यक समझा।[76] अल्बरूनी लिखता है कि हिन्दू विधाएँ हमारे विभिन्न प्रदेशों से भागकर काश्मीर और वाराणसी (काशी) जैसे सुदूर स्थानों में चली गई हैं जहाँ मेरे हाथ भी नहीं पहुच सकते।[77] अल्बरूनी ने वाराणसी में श्रेष्ठतम विद्यालय होने का संकेत किया है। काशी बारहवीं शताब्दी में शासन कर रहे गाहडवालों का दूसरा महत्वपूर्ण आवास थी।[78] प्रसिद्ध कश्मीरी कवि श्री हर्ष गहडवाल शासक विप्नचन्द्र के सभासद थे। उन्होने नैषधचरित की रचना काशी के प्रवास के समय ही की थी। कबीर और तुलसी के समान संत कवि काशी से ही सम्बद्ध थे।

नालन्दा विश्वविद्यालय

पटना से लगभव 50 मील की दूरी पर नालन्दा है। बुद्ध के प्रमुख शिष्य सरिपुत्र की यह जन्मस्थली थी। प्राचीन काल के उत्तरार्ध तक नालंदा विश्वविद्यालय अभूतपूर्व ख्याति प्राप्त कर चुका था। विद्या के केन्द्र के रूप में इसका इतिहास लगभव 450 ईस्वी से प्रारंभ होता है क्योंकि 410 ईस्वी में फाह्यान ने नालंदा की यात्रा के समय विद्या के केन्द्र के रूप में इसका वर्णन नही किया।[79] वैसे नालंदा की ख्याति भगवान बुद्ध के समय से ही थी। 500 श्रेणियों ने 10 करोड़ मुद्राएं एकत्र करके नालंदा क्षेत्र को क्रय किया और भगवान बुद्ध को अर्पित कर दिया। तथागत ने कई दिवस यहाँ के आम्रवन

में व्यतीत किये और अपने शिष्यों को धर्म की शिक्षा प्रदान की। कालान्तर में अशोक महान ने वहाँ एक विशाल विहार का निमार्ण कराया।[80] ऐसा प्रतीत होता है कि अपने प्रारंभिक काल में यह स्थान ब्राह्मण शिक्षा का केन्द्र होते हुये भी बौद्ध धर्म व शिक्षा का प्रसार स्थल था।[81] यह धार्मिक सहिष्णुता का ही प्राचीन काल का एक अद्वितीय प्रमाण है कि नालंदा जैसे सबसे बड़े बौद्ध विद्यापीठ के विकास, साधन-सामग्री, संकलन आदि के लिये सार्वजनिक दान गुप्त राजाओं द्वारा प्रदान किया जाता था।[82] उसके पश्चात बुद्धगुप्त, तथागतगुप्त, नरसिंहगुप्त (बालादित्य) आदि अनेक गुप्त राजाओं ने इसे अपना संरक्षणत्व प्रदान किया।

नगर एवं भवन विन्यास

उत्खनन के उपरान्त यह पुष्ट हुआ है कि नालंदा विश्वविद्यालय परिसर लगभग 1 मील लम्बाई और 1/2 मील चौडाई में प्रसरित था। पूर्व निश्चित योजनानुसार ही इन विहारों और स्तूपों का निर्माण एक पंक्ति में नियत दूरी पर हुआ था। विद्यालय भवन में 7 विशाल व्याख्यान मंदिर तथा अध्यापन के निमित्त 300 छोटे कक्ष थे।[83] विद्यार्थी छात्रावासों में रहते थे तथा प्रत्येक कोने में कूपों का निर्माण किया गया था।[84] कुछ विहार बड़े भव्य तथा गगनचुम्बी शिखर वाले थे।[85] यशोवर्मा का एक अभिलेख प्राप्त हुआ है जिसमें लिखा है कि ''नालंदा के विहारों की शिखर-श्रेणियाँ गगनस्थ मेघों का चुम्बन करती थीं। इनमें अनेक जलाशय थे, जिनमें कमल तैरते थे।[86] यहाँ का सबसे बड़ा विहार 203 फुट लम्बाई एवं 164 फुट चौड़ा ई में विस्तश्त था, तथा इसके कक्ष 9½ से 12 फुट तक लम्बाई वाले थे।[87] सम्पूर्ण नगर एक परिखा से परिवृत्त था, जिसका द्वार दक्षिण दिशा में था।[88]

भोजन तथा आवास व्यवस्था

नालंदा विश्वविद्यालय के खर्चे के निमित्त 200 ग्राम दान में प्राप्त थे, जिसकी आय से यहाँ के भिक्षु कार्यकर्ताओं और भिक्षु अध्येताओं का पोषण सम्भव हुआ था।[89] बौद्ध विहारों का यह नियम था कि सामान्य विद्यार्थियों को नि:शुल्क भोजन व आवास तभी प्रदान किया जायें, जब वो विहार को अपना कुछ श्रमदान दें।[90] परंतु इस प्रकार प्रतीत होता है कि नालंदा मे सामान्य विद्यार्थियों को, जो हिन्दू होते थे भी भोजन और आवास नि:शुल्क प्राप्त होता था, क्योंकि अनेक हिन्दू दान-दाताओं के नालंदा को दान किये जाने के प्रमाण है।[91] गाँवों के निवासी प्रतिदिन कई मन चावल और दूध यहाँ भेजते थे।[92] यहाँ

पर विहारों का निर्माण केवल भिक्षु विद्यार्थियों के निवास के लिये ही करवाया गया था। विहार कम से कम दो मंजिल के थे। कुछ कक्ष विद्यार्थियों को अकेले रहने तो कुछ को साथ में रहने के लिये निर्मित थे। प्रत्येक विद्यार्थी के लिय पत्थर की एक चौकी, दीपक और पुस्तकें रखने के लिये एक आला बना हुआ था। प्रवेश क्रम के अनुसार विद्यार्थियों को कक्ष आवंटित किये जाते थे।[93]

पाठ्यक्रम

नालंदा मुख्य रूप से बौद्ध धर्म की महायान शाखा का गढ़ था। तथापि हीनयान का अध्ययन अध्यापन भी होता था। अतः पाली भाषा का अध्ययन आवश्यक था, क्योंकि अधिकाँश हीनयानी ग्रंथ पाली भाषा में ही थे।[94] नागार्जुन, असंग, धर्मकीर्तिग वसुबंध आदि ऐसे ही महायानी विचारक थे जिन्होने इसी विद्या केन्द्र से स्वयं की प्रतिभा को निखारा था।[95] यहां धर्मपाल, चन्द्रपाल, गुणमति, स्थिरमति, प्रभामति, जिनामित्र, आर्यदेव, दिंडनाग, ज्ञानचंन्द्र आदि ऐसे उद्‌भट विद्वान ने जिनके आखमण्डल की आभा से चमत्कृत होकर दूरस्थ देशों से भी व्यक्ति खिचे चले आते थे।[96] कुछ लोगों का सोचना है कि यहाँ का पाठ्यक्रम साम्प्रदायिक था, क्योकि यहाँ हिन्दू विषयों का अध्यापन नहीं होता था। परंतु यह जान लेना चाहिये कि व्याकरण, न्याय और साहित्य हिन्दू और बौद्ध सबके अध्यापन के विषय थे तथा इस काल में बौद्ध और हिन्दू धर्म तथा दर्शन परस्पर इतना अधिक संबद्ध हो गये थे कि विवादानुरागी ही नहीं अपितु सत्यान्वेषी विद्वानों के लिये भी एक के बिना दूसरे का अध्ययन करना लगभग असंभव था।[97] स्वयं बौद्ध विद्वानों ने उद्‌धृत किया है कि नालन्दा में अन्य फुटकर विषयों के अतिरिक्त तीनों वेदों, वेदान्त और सांख्य दर्शन का भी अध्यापन होता था।[98] फुटकर विषयों से तात्पर्य संभवतः धर्मशास्त्र, पुराण, ज्योतिष आदि से था।[99]

ग्रन्थालय

ग्रन्थालय से तात्पर्य पुस्तकालय से है। विद्यार्थियों की सुविधा के लिये यहां पर धर्म यज्ञ नामक विशाल पुस्तकालय का निर्माण करवाया गया था।[100] चीनी विद्वानों के नालंदा में महीनों रूके रहने का एक कारण यह भी था कि यहां वे बौद्ध आगमों तथा अन्य पुस्तकों की शुद्ध प्रतिलिपियां प्राप्त कर सकते थे।[101]

इत्सिंग ने नालंदा में 400 संस्कृत पुस्तकों की प्रतिलिपि तैयार की थी, जिसमें कम

से कम 5 लाख श्लोक रहे होंगे।[102] पुस्तकालय के मोहल्ले का नाम ''धर्मगंज'' था।[103] पुस्तकें तीन विशाल भवनों में रखी थीं, जिन्हे ''रत्न सागर'', ''रत्नोदधि'' तथा ''रत्नरंजक'' नाम से पुकारा जाता था।[104]

शिक्षण संस्थान

नालंदा केवल विहार नहीं था, इसकी कीर्ति शिक्षा के केन्द्र के रूप में थी।[105] ह्वेन्त्सांग लिखता है, ''विहार में कई हजार भिक्षु हैं। ये सभी उत्कट विद्वान और प्रकाण्ड पण्डित हैं। इनमें कुछ सौ तो ऐसे हैं, जिनका यश चारों दिशाओं को आच्छादित किये हुये है। भिक्षुक विनय के नियमों का कड़ाई से पालन करते हैं। ज्ञनार्जन और शास्त्रार्थ में वो दिन रात जुटे रहते हैं। एक दूसरे के दोषों और कमियों को भी वे बताते हैं। ज्येष्ठ और कनिष्ठ भिक्षु बराबर एक दूसरे का सहयोग करने के लिये तत्पर रहते हैं। इसलिये अपनी शंका का समाधान प्राप्त करने के निमित्त विदेशों से भी विद्यार्थी निःशंक भाव से यहाँ आकर आनन्द गद्गद होते हैं। नालन्दा के विद्यार्थी न होने के बावजूद यदि कोई असत्य भाषण करके ही स्वयं वहाँ से शिक्षा ग्रहण करने का मिथ्या दावा करता है, उसको भी समाज से आदर और सम्मान प्राप्त होता है।[106]

शुचिता और विद्वता

नालंदा के कुलपति अपने पाण्डित्य, निर्मल आचरण एवं अध्यात्म ज्ञान के लिये अत्यधिक प्रशंसित एवं ख्यात थे।[107] ह्वेन्त्सांग लिखता है, ''धर्मपाल और चंन्द्रपाल जिन्होंने तथागत की शिक्षाओं की महक को सर्वत्र फैलाया, गुणमति और स्थिरमति जिनकी विद्वता और प्रसिद्धी सर्वत्र व्याप्त हुई थी, प्रभाविदन जिन्होंने वाद-विवाद में अपने प्रभावशाली स्पष्ट तर्कों का दबदबा कायम किया, जिनमित्र-जिनका बात-व्यवहार उच्च स्तर का था, जिनचन्द्र-जिनका चरित्र आदर्श एवं बुद्धि प्रखर थी तथा शीलभद्र-जिनकी सर्वगुण सम्पन्नता व बुद्धिमत्ता उनकी नम्रता के कारण प्रकट नहीं हो पाती थी-ये सभी आदर्श आचरण वाले, विद्वानों में रत्न नालंदा की ख्याति बढ़ा रहे थे।[108] ये विद्वान अपने अध्ययन एवं अध्यापन के कार्य के अतिरिक्त अनेक बहुमूल्य ग्रंथों की रचना के लिये भी प्रसिद्ध हुये थे।[109] ह्वेन्त्सांग के समय में इस विद्यपीठ में विद्वता का सामान्य स्तर बहुत ऊंचा था। 5000 (या 10000) भिक्षुओं में 1000 ऐसे थे जो 30 सूत्र निकायों की व्याख्या कर सकते थे, तथा लगभग 50 ऐसे थे जो 50 सूत्र निकायों की व्याख्या कर सकते थे।[110]

संस्थान में प्रवेश

इस प्रतिष्ठित विश्वविद्यालय में प्रवेश पाने के लिये विद्यार्थियों की अपार भीड़ उमड़ा करती थी। अत: प्रवेश के नियमों को कठोर बनाया गया था। प्रवेश के आकांक्षी विद्यार्थियों को सबसे पहले द्वारपाल से वाद-विवाद करना पड़ता था तथा उसके द्वारा पूछे गये प्रश्नों का उत्तर देना पड़ता था। उसके प्रश्नों से दस-बारह विद्यार्थियों में एक या दो ही सफल हो पाते थे। द्वारपाल के रूप में ही भिन्न-भिन्न विषयों के अनेक विद्वान थे।[111]

विद्यार्थी संस्था एवं अध्यापक विद्यार्थी सम्बन्ध

इत्सिंग के समय यहाँ 3000 विद्यार्थी थे किन्तु ह्वेन्त्सांग के समय इनकी संख्या 10000 तक पहुँच गई गई।[112] यहाँ के शिक्षकों की संख्या 1510 थी, जिसमें से एक हजार दस, सूत्र निकायों मे दक्ष थे तथा शेष पाँच सौ अन्य विषयों में।[113] सामान्यत: एक अध्यापक अधिकतम 9 विद्यार्थियों को शिक्षित करता था, इस प्रकार वह प्रत्येक विद्यार्थी की प्रगति पर सम्यक दृष्टि रख पाता था, इसलिये अध्यापकों का अध्यापन बहुत अधिक प्रभावशाली रहा। विद्यापीठ में दो विशाल व्याख्यान भवन तथा 300 छोटे कक्ष थे, प्रतिदिन लगभग 100 व्याख्यानों का आयोजन होता था। विद्वान भिक्षुक अध्यापकों का बहुत आदर सम्मान था। इन्हें पालकी में आसन दिया जाता था।[114]

विश्वविद्यालय की प्रशासनिक व्यवस्था

प्रशासनिक प्रबंध की जानकारी प्राप्त करने के पर्याप्त स्त्रोत हैं। सम्पूर्ण विद्यालय का एक अध्यक्ष नियुक्त किया जाता था, जो ख्यातिलब्ध भिक्षु होता है। संघ के सदस्य उसका चुनाव करते समय उसका चरित्र, विद्वता और आयु का ध्यान रखते थे।[115] इनके चयन में स्थानीयता या प्रान्तीयता की सकीर्ण विचारधारा नही होती थी, क्योंकि 9 वी शताब्दी में जलालाबाद के एक भिक्षु को यहाँ का प्रधान आचार्य चुना गया था।[116] प्रधानाचार्य की सहायता के लिये दो समितियां होती थीं, पहली शिक्षा समिति और दूसरी प्रबंध समिति। विश्वविद्यालय में विद्यार्थियों के प्रवेश, पाठ्यक्रम निर्धारण तथा अध्यापकों में पाठ्य-विषयों के विभाजन का कार्य शिक्षा समिति करती थी, तो यही परीक्षाओं का संचालन एवं पुस्तकालयों का प्रबंध भी देखती थी। नए ग्रन्थों की रचना एवं जीर्ण शीर्ण पोथियों का पुनर्लेखन का कार्य शिक्षा समिति ही देखती थी। प्रबंध समिति का कार्य विश्वविद्यालय का सभी तरह का प्रबंध तथा आय-व्यय का संचालन करना था, तो नए भवनों का

निर्माण, पुराने भवनों की मरम्मत, छात्रों के लिये आवास, भोजन तथा चिकित्सा का प्रबंध यही समिति करती थी।[117]

तिब्बत में धर्म प्रसार का कार्य

आठवीं शताब्दी से नालंदा के विद्वान तिब्बत में बौद्ध धर्म और संस्कृति के प्रचार-प्रसार के लिये सक्रिय हो गये थे। नालंदा के भिक्षु चर्मगोमिन इस कार्य में अगुआ हुये। तिब्बत के राजा स्वी-स्त्रो-त्सान ने 749 ईसवी में नालंदा के भिक्षु शांतरक्षित को बौद्ध धर्म के प्रचार के लिये तिब्बत आमंत्रित किया था तथा उनके पहुंचने पर उनका शाही स्वागत किया था। उनकी देख-रेख में वहाँ प्रथम बौद्ध विहार का निर्माण हुआ, जिनका उन्हें महास्थिवर बनाया गया।[118] पद्मसम्भव नामक एक कश्मीरी पण्डित ने जिसकी शिक्षा-दीक्षा नालन्दा में ही हुई थी, इनकी बहुत सहायता की।[119]

नालंदा का पतन

तारानाथ ने लेख किया है कि नालंदा के निरीक्षण के निमित्त पाल तथा विक्रमशिला के आचार्यों को भेजा करते थे।[120] इस उद्धरण में प्रतीत होता है कि 12वीं शताब्दी में विक्रमशिला को नालंदा से अधिक राजाश्रय प्राप्त हो गया था। यह नालंदा की अवनति का सूचक था, परंतु 12वीं शताब्दी के अन्त में बख्तियार खिलजी के नेतृत्व में यहाँ हुए मुस्लिम आक्रमण ने नालंदा को पूर्णत: नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। क्रूर धर्मान्ध आक्रमणकारियों ने भवनों को या तो गिरा दिया अथवा उन्हें अग्नि के हवाले कर दिया तथा वहाँ रहने वाले भिक्षुओं को मौत के घाट उतार दिया। बिहार का अमूल्य पुस्तकालय उन्होंने फूंक दिया। नृशंस, उन्मादी, आततायी, आक्रमणकारी भला नालंदा और पुस्तकालय की अमूल्य निधि का मूल्यांकन कर भी कैसे सकते थे?[121]

वलभी विश्वविद्यालय

गुजरात, कठियावाड़ के पूर्वी समुद्री किनारे पर वला नामक स्थान पर स्थित वलभी एक अन्तरराष्ट्रीय बंदरगाह तो था ही, शिक्षा का ऐसा प्रधान केन्द्र भी था जो नालंदा के विश्वविद्यालय के साथ ही विकसित हुआ था।[122] इत्सिंग ने अपने यात्रा वृत्तांत में लिखा है कि उत्तर भारत में नालंदा ही वलभी की ख्याति के समकक्ष है।[123] 640 ईस्वी में यहाँ लगभग 100 विहार थे जिनमें 6000 भिक्षु अध्ययनरत थे।[124] स्थिरमति और गुणमति नामक प्रसिद्ध विद्वान इसी विश्वविद्यालय से सम्बद्ध थे।[125] कथा सरित सागर से यह विदित होता है कि गंगा की तरहटी से अपने ब्राह्मण भी अपने पुत्रों को यहाँ शिक्षा प्रदान

करवाने के लिये भेजते थे।[126] यहाँ व्याकरण, व्यवहारशास्त्र, मुनीमी तथा साहित्य जैसे लौकिक विषयों में विशेषज्ञता और दक्षता प्राप्त करने वाले युवकों को तत्कालीन शासन में ऊंचे-2 पदों पर नियुक्ति प्राप्त हो जाती थी।[127] ऐसे प्रमाण प्राप्त होते हैं कि सम्पूर्ण भारत से वलभी में प्रसिद्ध और विद्वान एकत्र होकर 2-3 के समूह में निवास करते थे तथा सभी संभव तथा असंभव विषयों पर तर्क-वितर्क करते थे।[128] वलभी में जिसका तर्क मान्य हो जाता था, उसके पाण्डित्य की प्रसिद्धी दूर-दूर तक हो जाती थी। विश्वविद्यालय के प्रसिद्ध विद्वानों का नाम यहाँ भी नालंदा की भाँति उत्तुंग द्वार पर उत्कीर्ण करवाया जाता था।[129]

आर्थिक स्थिति

वलभी बहुत सम्पन्न नगर था। यहां 100 करोड़पति नागरिकों का वास था, जो विश्वविद्यालय को बराबर आर्थिक सहयोग प्रदान करते थे।[130] इसलिये विश्वविद्यालय की आर्थिक स्थिति अत्यंत सुदृढ़ थी। मैत्रक वंश के राजाओं का यहाँ पर 480 ईस्वी से 775 ईसवी तक शासन रहा। ये राजा साधारण व्ययों के अतिरिक्त पुस्तकों के निमित्त भी बडे-बडे दान दिया करते थे।[131] 775 ईस्वी में अरबों के आक्रमण से तत्कालीन शासक नष्ट-भ्रष्ट हो गये। अतः कुछ समय के लिये विश्वविद्यालय का कार्य भी प्रभावित हुआ।[132] जैसे ही उथल-पुथल शांत हुई मैत्रकों के उत्तराधिकारियों के सहयोग के कारण वलभी पुनः ख्यात हो गई और बंगाल जैसे सुदूर प्रान्त से बारहवीं शताब्दी तक ज्ञान-पिपासु यहाँ आते रहे।[133]

विक्रमशिला विश्वविद्यालय

यह विश्वविद्यालय वर्तमान बिहार राज्य के भागलपुर जिला मुख्यालय के 24 मील पूर्व की ओर पथरघाट नामक स्थान में स्थित था। इसकी स्थापना 8वीं शताब्दी में बंगाल के पाल वंशीय शासक धर्मपाल ने करवाई थी।[134] मध्य पूर्व युग में 4 शताब्दियों तक विद्या के केन्द्र के रूप में इस विद्यालय की ख्याति सर्वाधिक थी।[135] बंगाल में 775 ईसवी से 800 ईसवी तक शासन करने वाले धर्मपाल ने यहां अनेक बुद्ध मंदिर और बिहार बनवाकर उन्हें मुक्त हाथों से दान किया ही, उसके उत्तराधिकारी भी 13वीं शताब्दी तक इस क्रम को बनाए रखे।[136] अल्पकाल में ही इस विश्वविद्यालय की स्थिति हिमालय की सीमाओं का उलंघन कर गई और तिब्बत से ज्ञान पिपासु भारतीय पण्डितों के चरणों मे बैठकर अध्ययन करने आने लगे।[137] तिब्बती सूत्रों से ज्ञात होता है कि यहां के बुद्ध,

ज्ञानपाद, वैरोचन, रक्षित, जेतारि, रत्नाकर, शान्ति, ज्ञान श्री मित्र, रत्नब्रज, अभ्यंकर गुप्त, तथागत रक्षित तथा अन्य दर्जनों विद्वानों ने संस्कृत में ग्रंथ लिखे तथा उनका तिब्बती में अनुवाद भी करवाया।[138] दीपंकर नामक बौद्ध भिक्षु जिनका जन्म 580 ईसवी में हुआ था, इस शिक्षा केन्द्र में ऐसे महान प्रतिभाशाली व्यक्तियों में अकेले थे,[139] जिन्होंने लगभग 200 ग्रंथों की रचना की।

विद्यार्थियों की संख्या

विक्रमशिला विश्वविद्यालय में ख्यातिलब्ध ज्ञानियों की विशाल संख्या निखरकर इस प्रकार आभाषित होता है कि छात्रों की संख्या भी अधिक रही होगी। दसवीं शताब्दी में यहाँ के विद्यार्थियों की संख्या काफी थी, जो नालंदा विश्वविद्यालय के छात्रों की संख्या से किसी प्रकार कम नहीं थी।[140] पूर्व मध्य काल में इसके अतिरिक्त भारत देश में इतना अधिक महत्वपूर्ण कोई दूसरा शिक्षा संस्थान नहीं था, इसलिये सम्पूर्ण देश एवं विदेशों से भी छात्र यहाँ विद्या ग्रहण करने आते थे जिसके कारण यहाँ छात्रों की संख्या अधिक होने का भान होता है।[141]

प्रशासनिक व्यवस्था एवं प्रवेश के नियम

सामान्य प्रशासनिक व्यवस्था बनाए रखने का उत्तरदायित्व स्वयं महास्थविर का था। विभिन्न कार्यों यथा उपसंपदा और प्रवज्जा दान, भृत्य निरीक्षण तथा नियुक्ति भोजन तथा आच्छादन का समविभाग तथा विहार के अन्य कार्यों का उत्तरदायित्व संभालने के लिये परिषद थी, जिसके विभिन्न सदस्यों को यह कार्य दिया जाता था।142 अध्यापक व भिक्षु का जीवन बहुत सरल था। 4 भिक्षुओं के व्यय से अधिक एक अध्यापक को प्राप्त नहीं होता था।[143]

विद्यापीठ का प्रबंध 6 द्वारपंण्डितों में विभक्त था, जिसके प्रधान स्वयं महास्थिविर होते थे। इन द्वार पण्डितों के द्वारा प्रवेशार्थियों की योग्यता की परीक्षा की जाती थी। राजा कनक (पहचान संदिग्ध है) के शासन काल में विहार में निम्नलिखित द्वारपंण्डित थे : पूर्वी द्वार- आचार्य रत्नाकरशान्ति। पश्चिमी द्वार-काशी के वागीश्वरकीर्ति। उत्तरी द्वार-नरापा, दक्षिणी द्वार- प्रजाकरमति। प्रथम मध्य द्वार- कश्मीर के रत्नवज्र। द्वितीय मध्य द्वार- गौड़ के ज्ञान श्रीमित्र।[144]

पाठ्यक्रम और उपाधि

यहाँ बौद्ध धर्म और दर्शन के अतिरिक्त न्याय, तत्वज्ञान, व्याकरण आदि की भी शिक्षा

प्रदान की जाती थी। यद्यपि यहाँ का पाठ्यक्रम नालंदा के समकक्ष न तो विस्तृत था और न ही उदार, तथापि वर्तमान विश्वविद्यालयों के समान व्यवस्थित था, क्योंकि यहां के स्नातकों को समावर्त्तन के अवसर पर बंगाल के शासक उपाधि अथवा प्रमाण पत्र प्रदान करते थे।[145] यह उपाधि विद्यार्थी के विषय विशेष में दक्षता का प्रमाण मानी जाती थी।[146] तिब्बती श्रोतों से विदित होता है कि जेतारि तथा रत्नव्रज को क्रमशः महीपाल तथा कनक नामक राजाओं की ओर से उपाधियाँ प्रदान की गई थीं।[147]

बिहार का विध्वंश

1203 ईस्वी में जब शाक्य श्री भद्र इस विहार के महास्थविर थे, बख्तियार खिलजी ने उस पर आक्रमण करके उसे नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। उसने इसे दुर्ग समझकर उजाड़ा और यहाँ पर निवास कर रहे विद्वान भिक्षुओं को तलवार के घाट उताद दिया। यहां हिन्दू धर्म से सम्बंधित सैकड़ों पुस्तकें थीं, जिन्हे समझने के लिये मुसलमानों ने बचे हुये अन्य पण्डितों को बुलाया, परंतु कोई पण्डित अर्थ ठीक से बता नहीं पाया क्योंकि विद्वान मारे जा चुके थे।[148]

उपरोक्त विशिष्ट शिक्षण संस्थाओं के अतिरिक्त संपूर्ण भारत में कुछ अन्य बौद्ध विद्यापीठ तथा देवलयों में संचालित विद्यापीठों का उल्लेख भी प्राप्त होता है। 7वीं शताब्दी में संचालित बौद्ध विद्यापीठों में कश्मीर की राजधानी के पास जयेन्द्र विहार, पंजाब के जालंधर जिले के विहार, कन्नौज के पास भड़ विहार तथा आन्ध्र प्रदेश में अमरावती का विहार प्रसिद्ध था, तो हिन्दू देवालय विद्यापीठों में वर्तमान कर्नाटक राज्य के बीजापुर जिले का सलोत्गी देवालय विद्यापीठ, दक्षिण अरकाट जिले का एन्नायिरम् देवालय विद्यापीठ, चिंगलपेट जिले का तिरूमुक्कुदल देवालय विद्यापीठ, तथा हसी जिले का तिरूवोर्रियूर देवालय विद्यापीठ भी शिक्षार्थियों को विभिन्न लौकिक विषयों का अध्ययन करवा रहा था। ये विद्यापीठ यद्यपि शिक्षा के क्षेत्र में बहुत अधिक ख्याति तो नहीं प्राप्त कर सके परंतु स्थानीय विद्यार्थियों की ज्ञान पिपाशा शान्त करने में अवश्य सफल रहे हैं।[149]

उपरोक्त विवेचना से स्पष्ट है कि प्राचीन भारत में भी वर्तमान काल के समान ही विद्यार्थियों को शिक्षा प्रदान करने के लिये कुछ विशिष्ट शैक्षणिक संस्थाएं संचालित थीं। जो उन्हें विभिन्न लौकिक एवं पारलौकिक विषयों का अध्ययन करवाकर उनके चारित्रिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन कर रही थीं।

संदर्भ

1. प्राचीन भारतीय शिक्षण पद्धति, अल्तेकर, पृ. 56
2. वही
3. प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, विमलचन्द्र पाण्डेय, पृ. 555
4. एशिएंट इण्डियन एजुकेशन, लन्दन 1951, आर.के. मुखर्जी पृ. 443
5. रामायण, 7.101.10.16
6. महाभारत, 1.3.20
7. प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, जयशंकर मिश्र पृ. 562
8. जातक, 1, पृ. 272, 285; 2-पृ. 85, 87; 3-पृ. 238; 4-पृ. 50, 309, 312
9. प्राचीन भारतीय शिक्षण पद्धति, अल्तेकर, पृ. 84
10. प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, जयशंकर मिश्र, पृ. 562
11. वही, पृ. 563
12. वही
13. जातक, 456
14. तिलमुत्ति जातक 252
15. जातक संख्या 378
16. जातक संख्या 489
17. जातक संख्या 336
18. जातक, 3. पृ. 115
19. प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, जयशंकर मिश्र, पृ. 563
20. वही
21. प्राचीन भारतीय शिक्षण पद्धति, अल्तेकर, पृ. 83
22. भारत वर्ष का सामाजिक इतिहास, विमलचन्द्र पाण्डेय पृ. 359
23. प्राचीन भारतीय शिक्षण पद्धति, अल्तेकर, पृ. 83
24. वही
25. वही. पृ. 84
26. प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, जयशंकर मिश्र पृ. 563
27. प्राचीन भारतीय शिक्षण पद्धति, अल्तेकर, पृ. 84
28. प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, जयशंकर मिश्र पृ. 563
29. वही
30. प्राचीन भारतीय शिक्षण पद्धति, अल्तेकर पृ. 84
31. चित्त संभूत जातक 498
32. जातक, 1, पृ. 272, 285; 4, पृ. 50, 224
33. जातक, 5. पृ. 263; 3; पृ. 238
34. जातक 2, 277

35. लेख रूप गणना वयवहार विधि हाथी गुम्फालेख
36. प्राचीन भारतीय शिक्षण पद्धति, अल्तेकर, पृ. 85
37. वही
38. जातक सं. 450
39. प्राचीन भारतीय शिक्षण पद्धति, अल्तेकर, पृ. 85
40. जातक, 3, पृ. 93
41. प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, जयशंकर मिश्र पृ. 563
42. जातक, सं. 498
43. प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, जयशंकर मिश्र, पृ. 564
44. प्राचीन भारतीय शिक्षण पद्धति, अल्तेकर पृ. 84
45. सुतसोम जातक जिल्द 5 पृ. 405
46. प्राचीन भारतीय शिक्षण पद्धति, अल्तेकर, पृ. 84
47. वही
48. वही
49. प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, जयशंकर मिश्र पृ. 562
50. प्राचीन भारतीय शिक्षण पद्धति, अल्तेकर, पृ. 85
51. वही
52. जातक सं. 522
53. प्राचीन भारतीय शिक्षण पद्धति, अल्तेकर पृ. 82
54. प्राचीन भारतीय शिक्षण पद्धति 1955, अल्तेकर पृ. 82
55. प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास 1983 जयशंकर मिश्र पृ. 563
56. वही
57. प्राचीन भारतीय शिक्षण पद्धति 1955, अल्तेकर, पृ. 83
58. वही
59. वही पृ. 85
60. प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास 1983, जयशंकर मिश्र पृ. 564
61. प्राचीन भारतीय शिक्षण पद्धति 1955, अल्तेकर पृ. 86
62. वही
63. प्राचीन भारतीय शिक्षण पद्धति, बनारस 1955, अल्तेकर पृ. 86
64. शत. ब्रा. 13.05.4.19, काशी के राजा धृतराष्ट्र ने वैदिक धर्म त्याग दिया क्योंकि उनके अश्वमेध के घोड़ों को भरतों के राजा शतानीक ने हरण कर लिया था।
65. प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, पटना 1983, जयशंकर मिश्र पृ. 564
66. प्राचीन भारतीय शिक्षण पद्धति, बनारस 1955, अल्तेकर पृ. 87
67. प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, पटना 1983, जयशंकर मिश्र पृ. 564
68. प्राचीन भारत शिक्षण पद्धति, बनारस 1955, अल्तेकर पृ. 87

69. वही
70. वही
71. वही
72. प्राचीन भारतीय शिक्षण पद्धति, बनारस 1955, अल्तेकर, पृ. 87
73. वाटर्स, 2, पृ. 48
74. भविष्य पुराण, ब्रह्मखण्ड अध्याय 51.2.3.
75. प्राचीन भारतीय शिक्षण पद्धति, बनारस 1955, अल्तेकर पृ. 88
76. वही
77. ग्यारहवीं सदी का भारत, अल्बकनी, पृ. 176
78. प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, पटना 1983 जयशंकर मिश्र पृ. 565
79. प्राचीन भारतीय शिक्षण पद्धति, बनारस 1955, अल्तेकर पृ. 89
80. वही
81. प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, 1983, जयशंकर मिश्र पृ. 556
82. प्राचीन भारतीय शैक्षणिक पद्धति, बनारस 1955, अल्तेकर, पृ. 89
83. वही
84. आन हवेन्त्सांग्स ट्रैवल इन इण्डिया, लन्दन 1904-5, वाटर्स 2 पृ. 180
85. एपिगाफिया इण्डिका में प्रकाशित लेख 20, 43, यस्याम्म्बुधयवलेहि शिखर श्रेणी विहारावली।
    मालेवोर्ध्ववियजिनी विरचिता छात्रा मनोज्ञाभुवः।।
    नालान्दा हसतीव सर्वनगरीः शुभ्राभ्रगौरस्फुटर्च्य
    व्यांशु प्रकरोस्सदागमकला विख्यात विज्जना।।
86. प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, पटना 1983, जयशंकर मिश्र पृ. 556
87. वहीं
88. लाइफ ऑफ हवेन्टसांग बाई शमन-हुई-ली लन्दन 1911 (नवीन संस्करण) बील पृ. 109-114
    आन ह्वेन्त्सांग ट्रैवल इन इण्डिया, लन्दन 1904-5 वाटर्स पृ. 164-171
    इत्सिंग, पृ. 30 65, 86 तथा 154, तकसुकु द्वारा प्रकाशित
89. इत्सिंग जो यहाँ 10 वर्ष रहा उसके द्वारा दी गई संख्या
90. इत्सिंग, पृ. 106 तकसुकु द्वारा प्रकाशित
91. प्राचीन भारतीय शैक्षणिक पद्धति, बनारस 1955 अल्तेकर पृ. 91
92. प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, पटना 1983 जयशंकर मिश्र पृ. 556
93. वही
94. वही
95. प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, पटना 1983, जयशंकर मिश्र पृ. 557
96. वही
97. प्राचीन भारतीय शिक्षण पद्धति, बनारस 1983, अल्तेकर पृ. 94
98. लाइफ ऑफ ह्वेन्त्सांग बाई शमन-हुई-ली, लन्दन 1911 (नवीन संस्करण) पृष्ठ 112

99. प्राचीन भारतीय शिक्षण पद्धति, बनारस 1983, अल्तेकर, पृ. 94
100. प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, पटना 1983, जयशंकर मिश्र पृ. 557
101. प्राचीन भारतीय शिक्षण पद्धति, बनारस 1955, अल्तेकर पृ. 93
102. ए रिकार्ड ऑफ दि बुद्धिस्ट रिलिजन बाई इत्सिंग, आवसफोर्ड 1896, तकसुकु पृ. 1
103. प्राचीन भारतीय शिक्षण पद्धति, बनारस 1955, अल्तेकर पृ. 93
104. हिस्ट्री ऑफ इण्डियन लाजिक, कलकत्ता 1921, विद्याभूषण पृ. 516
105. प्राचीन भारतीय शिक्षण पद्धति, बनारस 1955 अल्तेकर पृ. 93
106. आन ह्वेन्त्सांगस् ट्रैव्हल्स इन इन्डिया, लन्दन 1904-05 वाटर्स भाग 2, पृ. 165
107. प्राचीन भारतीय शिक्षण पद्धति बनारस 1955, अल्तेकर 92
108. आन ह्वेन्टसांग ट्रैव्हल्स इन इन्डिया, लन्दन 1904-05 वार्टस भाग 2, पृ. 165
109. प्राचीन भारतीय शिक्षण पद्धति बनारस 155, अल्तेकर 92
110. लाइफ ऑफ ह्वेन्त्सॉग बाई-शमन-हुई-ली, लन्दन 1911 बील पृ. 112
111. वही
112. वही
113. प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, पटना 1983, जयशंकर मिश्र पृ. 557
114. वही
115. वही
116. इण्डियन एंटिक्विरि में प्रकाशित अनेक शिलालेख, जिल्द 17, पृ. 307
117. वही
118. वही
119. इण्डियन टीचर्स ऑफ दि बुद्धिस्ट यूनिवर्सिटीज, मद्रास 1925, वसु पृ. 116-31
120. वही पृ. 36
121. वही
122. प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, पटना 1983, जयशंकर मिश्र पृ. 559
123. लाइफ ऑफ ह्वेन्त्सांग बाई शमन-हुई-ली, लन्दन 1911, बील, पृ. 177
124. ऑन ह्वेन्त्सांग ट्रैवल्स इन इण्डिया, लनदन 1904-05, वाटर्स अ.2. पृ. 246
125. इन्डियन एन्टिक्वरी, 6. पृ. 11
126. कथा सरित सागर 32.42-43 अन्तर्वेद्यामभूत्पूर्व वसदत्त इति हिजः।
    विष्णुदत्ताभिधानश्च पुत्रस्तस्योपयद्यत।।
    स विष्णुदत्तो वयसा पूर्णषोऽशवत्सरः।
    गतुं प्रवृत्ते विद्या प्राप्तये बलयी पुरीम्।।
127. रिकार्ड ऑफ दि वेस्टर्न वर्ल्ड बाई इत्सिंग, तकसुकु द्वारा सम्पादित पृ. 177
128. प्राचीन भारतीय शिक्षण पद्धति, बनारस 1955, अल्तेकर पृ. 97
129. रिकार्ड ऑफ दि वेस्टर्न वर्ल्ड बाई इत्सिंग, तकसुकु द्वारा सम्पादित पृ. 176-77
130. प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, पटना 1983, जयशंकर मिश्र पृ. 559

131.इण्डियन एन्टिक्विरी जिल्द 7 पृ. 67 सद्धर्मस्य पुस्तकोपचर्यार्थम्
132.प्राचीन भारतीय शिक्षण पद्धति, बनारस 1955, अल्तेकर पृ. 97
133.वही
134.वही पृ. 98
135.जर्नल ऑफ दि एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल, 5, पृ. 7
136.इण्डियन टीचर्स ऑफ दि बुद्धिस्ट यूनिवर्सिटीज, मद्रास 1925, वसु, पृ. 30
137.इण्डियन टीचर्स इन दि लौण्ड ऑफ स्नो, कलकत्ता 1893, एस.सी.रास, पृ. 58
138.प्राचीन भारतीय शिक्षण पद्धति, बनारस 1955, अल्तेकर पृ. 98
139.इण्डियन टीचर्स ऑ दि बुद्धिस्ट यूनिवर्सिटीज, मद्रास 1925, वसु पृ. 30
140.प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, पटना 1983, जयशंकर मिश्र पृ. 558
141.वही
142.प्राचीन भारतीय शिक्षण पद्धति, बनारस 1955, अल्तेकर पृ. 99
143.इण्डियन टीचर्स ऑफ दि बुद्धिस्ट यूनिवर्सिटीज, मद्रास 1925, वसु, पृ. 35
144.ए हिस्ट्री आफ इण्डियन लाजिक, कलकत्ता 1921, विद्याभूषण पृ. 520
145.प्राचीन भारतीय शिक्षण पद्धति, बनारस, 1955, अल्तेकर पृ. 99
146.इण्डियन टीचर्स ऑफ दि बुद्धिस्ट यूनिवर्सिटीज, मद्रास 1925, वसु, पृ. 47
147.वही पृ. 47/61
148.तबकाल ए नासिरी
149.अल्टेकर 1955 प्राचीन भारतीय शिक्षण पद्धति, बनारस

संदर्भ ग्रंथ

अल्तेकर अनन्त सदाशित : (1955) प्राचीन भारतीय शिक्षण पद्धति, बनारस

इण्डियन एंटिक्विटी

एपिग्राफिया इण्डिका

जर्नल ऑफ एशियाटिक सोसायटी आफ बंगाल

जातक : (1895–1913) भदन्त आनन्द कौसल्यायन

तकसुकु. जे.ए. : (1896) ''रिकार्ड ऑफ दि वेस्टर्न वर्ल्ड बाई इत्सिंग'' ऑक्सफोर्ड, लंदन

तबकात ए नासिरी

दास, एस.सी. (1893) ''इण्डियन टीचर्स इन दि लैण्ड ऑफ स्नो'' कलकत्ता

पाण्डेय, विमल चन्द्र : (1960) ''भारतवर्ष का सामाजिक इतिहास''

बील, एस. : (1911) ''लाइफ ऑफ ह्वेन्त्सांग बाईशमन–हुई–ली'' लंदन

भविष्य पुराण : (1912) वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई

महाभारत : (1929–33) नीलकंठ की टीका सहित, जूना

मिश्र, जयशंकर : (1983) प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास'', पटना
मुखर्जी, आर.के. : (1951) ''एन्शियंट इण्डियन एजुकेशन'' लंदन
रामायण : गीता प्रेस, गोरखपुर
बसु : (1925) इण्डियन टीचर्स ऑफ दि बुद्धिस्ट यूनिवर्सिटीज, मद्रास
वाटर्स : (1904-05) ऑन ह्वेन्त्सांग ट्रेवल्स इन इण्डिया, लंदन
विद्याभूषण : (1921) ए हिस्ट्री ऑफ इण्डियन लाजिक, कलकत्ता
शतपथ ब्राम्हण : (1994-97) अच्युत ग्रन्थाशाला कार्यालय, वाराणसी
सचाऊ, ई.सी. : (1888) अल्बरूनीज इण्डिया, लंदन
सोमदेव : (1960) कथासरित्सागर, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना
हाथी गुम्फा लेख : लेख-रूप-गणना-व्यवहार-विधि

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 20, अंक 1, अप्रैल 2013

व्यगोत्स्की के चिंतन में भाषा का केंद्रीय तत्व और भाषा विकास की प्रक्रिया

बीरेन्द्र सिंह*

बच्चों में भाषा के विकास को समझने में व्यगोत्स्की के विचारों का अध्ययन एक महत्वपूर्ण प्ररिप्रेक्ष्य उपलब्ध करवाता है। यह परिप्रेक्ष्य है– समाज की भूमिका का वे बच्चों में भाषा के विकास की व्याख्या सामाजिक प्रक्रियाओं के संदर्भ में करते हैं।

जो लोग यह मानते हैं कि बच्चे की मानसिक क्षमताओं के विकास की प्रक्रिया को प्रवृत्तियों के आधार पर व्याख्यायित किया जा सकता है, ज्ञान का भौतिकवादी दर्शन उन्हें चुनौती देता है। कुछ ऐसे लोग भी हैं जो बच्चे की मानसिक क्षमताओं को उसकी इन्द्रिय आदतों पर टिका देते हैं। भौतिकवादी दृष्टिकोण का मानना है कि ये दोनों बातें गलत हैं। वे मानते हैं कि मानसिक क्रियाएं जटिल होती हैं और उनकी जटिलता को कुछ आदतों या जन्मजात प्रवृत्तियों के आधार पर नहीं समझा जा सकता। इस दृष्टिकोण के अनुसार इन्सानी भाषा तथा व्यवहार को आत्मा की गहराई जैसी बातों के सहारे समझने से मनोविज्ञान को विज्ञान के रूप में विकसित होने में मदद नहीं मिलती। वैज्ञानिक मनोविज्ञान को उन वास्तविक गतिविधियों को समझना चाहिए जिनमें बच्चा जीता है। मानसिक गतिविधियों को उन सामाजिक परिस्थितियों का परिणाम मान कर अध्ययन किया जाए। मनुष्य के जानवर से इंसान के रूप में रूपांतरित होने की प्रक्रिया विकास के नए सिद्धांत के विकसने की ओर संकेत करती है। पशु अवस्था में उच्च स्तरीय स्नायु प्रक्रियाओं का विकास व्यक्तिगत अनुभव के आधार पर होता था। लेकिन मानव अवस्था में अन्य लोगों के अनुभवों को साझा अभ्यास तथा भाषा के द्वारा ग्रहण करना बुनियादी बात बन गई। (लूरिथ, 1959.11)। बाल विकास में भाषा की भूमिका एक माह की उम्र में ही दिखाई देने लगती है। भाषा, जिसमें मानवजाति के अनुभव समाए रहते हैं। जब व्यस्क व्यक्ति वस्तुओं को नाम देते हैं तथा वस्तुओं में गठजोड़ एवं संबंधों को परिभाषित करते हैं तब

* शिक्षाशास्त्र विभाग, दिल्ली–विश्वविद्यालय, दिल्ली–110 007

बच्चे के समक्ष चिंतन के नऐ रूप पनपते हैं। ये रूप उन रूपों से अधिक गहरे तथा जटिल होते हैं जिन्हें वह केवल अपने अनुभवों के आधार पर बना सकती थी। ज्ञान के हस्तांतरण तथा संकल्पनाओं के निर्माण की यह पूरी प्रक्रिया बच्चे के बौद्धिक विकास की प्रक्रिया को बनाती है। यदि शिक्षा की प्रक्रिया में इस बात को भुला दिया जाए तो बाल मनोविज्ञान की व्याख्या करना असंभव हो जाएगा। बच्चे की मानसिक प्रक्रियाओं को उसके वातावरण के साथ अन्त:संप्रेषण के उत्पाद के रूप में अध्ययन करना रूसी मनोविज्ञान का सबसे महत्वपूर्ण सिद्धांत है। (वही, 12)।

भाषा के आधार पर बच्चा नई किस्म की शारीरिक गतिविधियों को सीखता है। भाषा के द्वारा ही वह सूक्ष्मीकरण तथा अनन्त संकेतों से सामान्यीकरण करने का तरीका विकसित करता है। भाषा का बुनियादी काम केवल यह नहीं है कि वह बाहरी दुनिया में मिलने वाली संगत वस्तुओं (Correspnding Objects) की तरफ संकेत करता है। बल्कि इसका महत्व इसलिए है कि इसके द्वारा प्रत्यक्ष अनुभवों को किन्हीं श्रेणियों से जोड़ा जा सकता है। शब्द की यही भूमिका इसे मानसिक प्रक्रिया में निरपवाद तौर पर महत्वपूर्ण बनाती है। (वही 12)। एक बच्चा किसी कप को देखता है। इस वस्तु (कप) की पहचान वह कप के रूप में ही कैसे करेगा? एक बार कप की पहचान करने के बाद किसी और कप की कप के रूप में पहचान कैसे करेगा? विशिष्ट कप के आधार पर कप की संकल्पना का निर्माण होने की प्रक्रिया का अध्ययन करना, भाषा तथा मानसिक विकास के बीच संबंधों को समझना एक चुनौतीपूर्ण तथा महत्वपूर्ण काम है।

भाषा के द्वारा वयस्क, बच्चे की गतिविधियों को नियंत्रित करते हैं। इन शाब्दिक आदेशों का उपयोग बच्चा स्वयं अपने व्यवहारों को नियंत्रित तथा संगठित करने हेतु करने लगता है। भाषा के माध्यम से उपलब्ध विवरण उसके व्यवहार को परिवर्तित करने में सक्षम हैं। यह व्यवहार परिवर्तन ही मानसिक प्रक्रियाओं का पुनर्संगठन है। व्यगोत्स्की का मानना था कि वाणी मानसिक प्रक्रियाओं के बनने में निर्णायक भूमिका निभाती है। जटिल मनोवैज्ञानिक कार्यों का पुनर्संगठन कैसे होता है। (वही. 15)। अपने द्वारा किए गए प्रयोगों के आधार पर व्यगोत्स्की इस नतीजे पर पहुँचे की मानसिक प्रक्रियाओं के बनने का स्रोत बच्चे तथा व्यस्क के बीच वाचिक संप्रेषण में है।

प्रयोगों के आधार पर यह बात स्थापित हुई है कि शब्द वास्तविक वस्तुओं का

स्थान ले लेते हैं। यानि पहले वस्तुओं को दिखाने या उनके संपर्क में रहने पर तंत्रिकातंत्र में जिस प्रकार की हलचल होती थी। वही हलचल उस वस्तु का नाम लेने पर उत्पन्न हो जाती है। शब्द अनानुबंधित (Unconditioned) या अनुबंधित (Conditioned) उद्दीपकों की जगह ले सकते हैं। (वही.18)।

1929 में व्यगोत्स्की ने दिखाया कि चार से पाँच साल का बच्चा जब किसी कठिन समस्या का सामना करता है तब वाणी उत्पन्न होती है। इस वाणी के सहारे वह स्थिति की 'वाचिक नकल' (Verval copy) तैयार करता है। इस नकल के संबंध को वह अपने विगत अनुभवों के साथ जोड़ता है तथा समस्या का हल ढूढ़ने की कोशिश करता है। ऐसी स्थिति में उत्पन्न वाणी 'आत्मकेन्द्रित वाणी' नहीं होती जैसा की उस समय पियाजे बता रहे थे। बच्चा पहले जोर-जोर से बोलता है, धीरे-धीरे जोर से बोलना फुसफुसाहट में बदलकर 'आंतरिक वाणी' (Internal Speech) बन जाता है। 'आंतरिक वाणी' के सहारे सात-आठ साल के बच्चे किसी जटिल समस्या में विहित संबंधों को समझ पाते हैं।

लेव सेमेनोविच व्यगोत्स्की का जन्म 1896 में हुआ था। उन्होंने मास्को विश्वविद्यालय में भाषाविज्ञान, सामाजिकविज्ञान, मनोविज्ञान, दर्शन तथा कला के क्षेत्र में गहन अध्ययन किया था। 1924 में उन्होंने मनोविज्ञान के क्षेत्र में व्यवस्थित रूप से कार्य करना प्रारंभ किया था। इसके दस वर्ष बाद 38 वर्ष की आयु में दमे से उनकी मृत्यु हो गई। इस अवधि में उन्होंने लूरिया, लियोंतिव और सखारोव जैसे छात्रों और सहयोगियों के साथ मिलकर विकासात्मक मनोविज्ञान, शिक्षा तथा मनोरोगविज्ञान के क्षेत्र में अनेक अनुसंधानपरक कार्य किए। (विचार और भाषा. 7)। भाषा और विचार के अन्र्तसंबंधों पर केन्द्रित उनकी पुस्तक 'विचार और भाषा' का प्रकाशन उनकी मृत्यु के बाद 1934 में हुआ। 1930 के आसपास बौद्धिकता की कमजोर पड़ती लड़ाई में उन्होंने दो बातों पर ध्यान दिया:

(1) अपने आपको असभ्य व्यवहारवाद से मुक्त करना, तथा

(2) मानसिक प्रक्रिया के वस्तुपरक नजरिए से स्वयं को बचाना। इन्हीं कारणों से प्रकाशन के दो वर्ष बाद ही 1936 में इस पुस्तक के जब्त करने के बाद 1956 में इसे फिर से प्रकाशित किया गया।

भाषा का केन्द्रीय तत्व

व्यगोत्स्की ने इस बात की पहचान करने पर अपना ध्यान लगाया कि भाषा में सबसे महत्वपूर्ण क्या है? इसके लिए उन्होंने उस समय उपलब्ध विचारों का विश्लेषण किया। उन्होंने पाया कि कुछ विचारों ने ध्वनि को भाषा का केन्द्रीय तत्व माना है। उन्होंने पाया कि ध्वनि अपने आप में किसी बात का द्योतक नहीं है। कोई भी ध्वनि तभी सार्थक है जब वह किसी वस्तु या संकल्पना के बारे में बताती हो। ऐसी ध्वनि जिसमें कोई अर्थ प्रतिबिंबित हो। 'रोटी' शब्द का उच्चारण भाषा की दृष्टि से कोई महत्व नहीं रखता यदि वह किसी वस्तु-विशेषज्ञ के अर्थ को व्यंजित न करे। 'रोटी' के उच्चारण की ध्वनि उस समय सार्थकता ग्रहण करती है जब 'रोटी' के उच्चारण से किसी खाद्य वस्तु के बारे में पता चलता है। व्यगोत्स्की के अनुसार भाषा की सार्थकता ''शब्द के आन्तरिक पक्ष शब्द के अर्थ में खोजी जा सकती है।।'' (वही. 25)। शब्द के बाह्य पक्ष ध्वनि तथा लिपि से भाषा की सार्थकता की दिशा में कुछ भी नहीं खोजा सकता है। ''अर्थ शब्द का उससे अलग न होने वाला हिस्सा भी है। इस प्रकार का जितना संबंध भाषा के संसार से है उतना ही विचार के संसार से भी है। अर्थ रहित शब्द ध्वनिमात्र होता है और मानव भाषा का हिस्सा नहीं होता।'' (वही)। हम जब भी भाषा के लिए ध्वनि का उपयोग करते हैं तब हमें अर्थ की आवश्यकता होती है। शब्द का अर्थ ही है जो केन्द्रीय महत्व का होता है।'' जब बच्चों को किन्हीं शब्दों को सीखने में दिक्कत का सामना करना पड़ता है तो क्या इसलिए कि वे उन शब्दों की ध्वनि को बोल या सुन नहीं पा रहे? या उनकी दिक्कत का कारण कुछ और है? तालस्ताय ने लिखा है कि बच्चों को नए शब्द सीखने में अकसर कठिनाई होती है। इस कठिनाई का कारण इसकी ध्वनियां नहीं वरन् वह संकल्पना होती है जिसको यह शब्द प्रकट करता है।'' (वही. 27)। व्यगोत्स्की का विचार है कि ''ध्वनि को भाषा की एक स्वतंत्र संकल्पना स्वीकार करते हुए परंपरागत भाषाविज्ञान ने अकेली ध्वनि को विश्लेषण का आधार बनाया था। परिणाम स्वरूप यह भाषा के मनोविज्ञान के स्थान पर भाषा के शरीर और उच्चारण तथा श्रवण पर केन्द्रित था।'' (वही)। भाषा के शिक्षण के लिए इस बहस का निहितार्थ यह है कि वर्तनी तथा उच्चारण को केन्द्रीय महत्व की बातें मानने के विचार को छोड़कर शब्द के अर्थ पर अधिक ध्यान दिया जाए। भाषा-शिक्षण की प्रक्रिया अर्थ बनाने, ग्रहण करने तथा संप्रेषण करने पर टिकी होनी चाहिए। उदाहरण के लिए किसी कविता का शिक्षण उसके सस्वर वाचन की

जगह उसमें निहित बिंब तथा प्रतीकों की व्यवस्था को समझने पर टिका होना चाहिए।

पियाजे की आलोचना

व्यगोत्स्की ने पियाजे की आलोचना दो आधारों पर की है। एक तो यह कि पियाजे का विश्वास था कि बच्चे की भाषा का विकास व्यैक्तिक से सामाजिक की दिशा में होता है। व्योत्स्की ने उनके इस विश्वास का खंडन यह कहकर किया है कि भाषा होती ही सामाजिक है। दूसरा यह कि पियाजे का विश्वास था कि बच्चे की भाषा का विकास बच्चे द्वारा स्वतंत्र रूप से की जाने वाली संक्रियाओं (operations) के कारण होता है। लेकिन व्यगोत्स्की ने पाया कि बच्चों में भाषा के विकास के लिए वयस्कों की उपस्थिति अनिवार्य है। इस तथ्य की पुष्टि उनके द्वारा दी गई one of Promimal Development की संकल्पना को समझने से भी होती है। बच्चे भाषा का उपयोग अपने लिए नहीं करते। वे किसी से कुछ कहना चाहते है। वे कुछ भी कह सकते हैं। लेकिन उनमें भाषा का विकास तभी माना जाएगा जब वे ऐसी भाषा का उपयोग करे जिसे समुदाय समझ सके। इसलिए व्यगोत्स्की भाषा के विकास में सामाजिक संदर्भों का केन्द्रीय महत्व मानते हैं। Zone of Promimal Development की संकल्पना व्यवहारवाद के उस सिद्धांत जिसमें संकेत मध्यस्थता (Sigh-mediated) करते हैं का रूपांतरण है। इस संकल्पना में समाज मध्यस्थता करता है। (मोल. 5)।

पियाजे ने भाषा के कार्यों को दो श्रेणियों में रखा है– अह्मकेंद्रित तथा समाजीकृत। पियाजे के लिए विचार का विकास अतिघनिष्ठ वैयक्तिक, स्वत:स्फूर्त मानसिक स्थिति के धीरे-धीरे समाजीकरण की कहानी है।'' (वही. 40)। पियाजे का विचार है कि विकास व्यक्तिगत से सामाजिक की तरफ बढ़ता है। इसलिए उनके द्वारा ''सामाजिक भाषा को भी अह्मकेंद्रित भाषा के अनुवर्ती के रूप में निरूपित किया गया है न कि पूर्ववर्ती के रूप में।'' (वही)। यानि बच्चे में सामाजिक भाषा का विकास अहम्केंद्रित भाषा के बाद होता है न कि इसका उलट। पियाजे का विचार है कि बच्चे की भाषा का एक कार्य नितांत वैयक्तिक होता है। इस धारणा के विपरीत व्यगोत्स्की का विचार है कि– ''बच्चों और युवाओं दोनों के लिए भाषा का प्रमुख प्रकार्य संप्रेषण, सामाजिक संपर्क स्थापित करना है। बच्चे की प्रारंभिक भाषा अनिवार्यत: सामाजिक होती है।'' (वही)। पियाजे जिसे सामाजिक भाषा कहते हैं व्यगोत्स्की उसे

संप्रेषणपरक कहना अधिक पसंद करते हैं। क्योंकि सामाजिक कहने से यह आभास होता है कि पहले यह सामाजिक न होकर कुछ और थी। पियाजे के विचार में भाषा का सामाजिक रूप उसे अह्मकेंद्रित रूप (Ego-centric speech) के बाद विकसित होता है। व्यगोत्स्की भाषा के अह्मकेंद्रित रूप की मान्यता को अस्वीकार करते है। वे मानते हैं कि भाषा प्रारंभ से ही सामाजिक होती है। दो साल का कोई बच्चा यदि गेंद से खेलते समय किन्हीं सार्थक शब्दों का प्रयोग करता है तो क्या उसके द्वारा प्रयोग में लाए जा रहे शब्द समाज की देन है या नहीं? यदि वे सार्थक शब्द हैं तो वे उस समाज की देन हैं जिसमें बच्चा रहता है। इसी कारण व्यगोत्स्की भाषा के सामाजिक रूप को ही मान्यता देते हैं। समाज से सीखी गई भाषा का उपयोग बच्चा स्वयं से बात करने हेतु कर सकता है। लेकिन इतनी मात्रा से भाषा वैयक्तिक नहीं बन जाती है बल्कि सामाजिक भाषा अपने लिए इस्तेमाल किए जाने की स्थिति में अधिक संक्षिप्त और विशिष्ट हो जाती है।

बच्चा अपने लिए भाषा का उपयोग करते समय अधूरे वाक्य बोल सकता है। ''व्यगोत्स्की ने सुझाव दिया था कि जब कोई बच्चा छह या सात वर्ष की आयु में अपने लिए भाषा का प्रयोग करना बंद कर देता है तो इसका कारण यह होता है कि भाषा का आंतरिकीकरण है और अब उसका आंतरिक भाषा के रूप में प्रयोग जारी है।'' (ब्रिटन. 199)। बच्चे की गतिविधियों में 'अपने लिए भाषा' या 'अह्मकेंद्रित भाषा' महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। चाहे वह गणित के सवाल हल कर रही हो, खेल में भोजन बना रही हो, किसी को ढूढ़ रही हो या किसी अनजान वस्तु या जगह का सामना कर रही हो। 'अह्मकेंद्रित भाषा' के सहारे बच्चा संप्रेषण को सुधारता है।

भाषा विकास की प्रक्रिया

व्योगत्स्की ने प्रयोगों के आधार पर सिद्ध किया कि ''किसी क्रियाकलाप के सहजप्रवाह में बाधा आना अह्मकेंद्रित भाषा के लिए महत्वपूर्ण उद्दीपन है। किसी स्वत:स्फूर्त गतिविधि में बाधा अथवा रूकावट गतिविधि के कर्ता को उस गतिविधि का बोध करवाती है।'' (व्यगोत्स्की. 87)। मान लो कोई बच्चा आवाज करने वाले जूते पहनते हैं। जूते पहनने की इस गतिविधि में यदि यह कहहकर व्यवधान डाला जाए कि 'तुम ऐसे जूते क्यों पहनते हो' तो वह अपनी ही गतिविधि पर सोचना शुरू करेगा और इसका असर उसके भाषाई विकास पर पड़ेगा। यदि उन जूतों को पहनाकर उसे

उँचे-नीचे रास्ते पर चलाया जाये तब भी वह जूतों के बारे में अधिक सोच सकता है। बच्चों के साथ की जाने वाली गतिविधियों में ''कुछ कठिनाइयां और हताशाएं'' जोड़ देने से सीखने की गति तेज होती है। ''उदाहरण` लिए जब कोई विद्यार्थी चित्रकारी के लिए तैयार हो रहा था अचानक उसे पता चला कि कागज नहीं था अथवा उसके लिए जरूरी रंग की पैंसिल नहीं थी। दूसरे शब्दों में कहें तो हमने उसके मुक्त क्रियाकलाप में बाधा पहुँचाकर उसे समस्याएँ झेलने को मजबूर कर दिया।'' (वही)। व्यगोत्स्की यह कह रहे हैं कि सीखना स्वत:स्फूर्त गतिविधियों पर ही टिका नहीं रहता। इसमें समाज का अनेक प्रकार से हस्तक्षेप होता है। हस्तक्षेप द्वारा सीखने की गति को परिवर्तित किया जा सकता है।

व्यगोत्स्की उदाहरण देते है कि ''मैंने अभी-अभी एक गांठ बांधी-मैंने यह सचेतन रूप से किया, फिर भी मैं यह नहीं बता सकता कि मैंने कैसे किया, क्योंकि मेरा संज्ञान गांठ पर टिका था न कि मेरी गतिविधि (गतियों) पर अर्थात् अपनी क्रिया को कैसे किया। लेकिन जब मेरे परवर्ती मेरे संज्ञान का विषय बन जाता है, तब मैं पूरी तरह से सचेत हो चुका होता हूँ।'' (वही. 120)। वे जानना और जानने के प्रति सचेत होना या करना और करने के प्रति सचेत होने में अंतर करते हैं। अपनी गतिविधियों के विभिन्न पक्षों को जानने-समझने के लिए समाज की जरूरत होती है। वे सीखने के प्रक्रिया में समाज की भूमिका को केंद्रीय मानते हैं। पियाजे के विपरीत वे सीखने को प्राकृतिक न मानकर सामाजिक मानते हैं। ''पियाजे का विश्वास है कि बालक का चिंतन कुछ सुनिश्चित चरणों और अवस्थाओं से होकर गुजरता है चाहे उसे अनुदेश दिए जाएं या नहीं। अनुदेशन एक अनावश्यक तत्व है। बालक के विकास के स्तर का आकलन यह नहीं है कि उसने अनुदेशों के माध्यम से क्या सीखा बल्कि सोचने का वह तरीका है जिससे वह उन विषयों के बारे में सोचता है जिनके बारे में कुछ नहीं सिखाया गया।'' (वही. 124) पियाजे के इस विचार के विपरीत व्योगत्सकी का मानना है कि ''जब हम बालक को व्यवस्थित रूप से ज्ञान प्रदान करते हैं, तब हम उसे ऐसा बहुत कुछ सिखाते हैं जिसे वह सीधे देख या अनुभव नहीं कर सकता।'' (वही. 114) इसी आधार पर वे मानते हैं कि 'भाई' तथा 'शोषण' की संकल्पना के विकास के रास्ते ही भिन्न नहीं है बल्कि इनसे जुड़े क्रिया-कलाप भी भिन्न हैं। (वही. 115) यानि इन संकल्पनाओं को सीखने के तरीके तथा वे सामाजिक स्थितियां जिनमें इनका उपयोग किया जाना है दोनों भिन्न हैं। 'भाई' की संकल्पना को सीखना

सांस्कृतिक रूप से सहज है लेकिन 'शोषण' की संकल्पना जटिल संकल्पना है जिसके लिए विशेष सांस्कृतिक प्रयास की जरूरत होती है। व्यगोत्स्की का विचार है कि समाज के वयस्क सदस्य के रूप में शिक्षक इसी प्रकार का विशेष प्रयास करता है। इस तरह दो पीढ़ियों के बीच सामाजिक बातों का हस्तांतरण होता है।

संदर्भ ग्रंथ

मोल, लूइस, (1990) व्यगोत्स्की एंड एजुकेशनः इन्स्ट्रक्शनल इंप्लीकेशन एंड अप्लीकेशन आफ सोशियाहिस्टोरिकल साइकॉलोजी, कैम्ब्रीज युनिवर्सिटी प्रेस, न्यूयार्क

ब्रिटन, जेम्स, (2006) भाषा और अधिगम, ग्रंथ शिल्पी प्रा.लि., नई दिल्ली

व्यगोत्स्की, एल.एस. (2007) भाषा और विचार, ग्रंथ शिल्पी प्रा.लि., नई दिल्ली

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 20, अंक 1, अप्रैल 2013

बिहार में विद्यालयी शिक्षा का स्वरूप और विकास

नीरा गौतम* और **रजनी रंजन सिंह****

सारांश

लगभग छह दशकों से अधिक समय से चले आ रहे नियोजित विकास कार्यक्रमों एवं अपनी विशाल मानव शक्ति, उर्वर जमीन, अपार खनिज व वन संपदा, नदियों की श्रृंखला के बावजूद बिहार प्रदेश भारतीय संघ का सबसे पिछड़ा और अविकसित राज्य माना जाता है। बिहार के पिछड़ेपन का एक प्रमुख कारण अशिक्षा है। 2011 की जनगणना के अनुसार यहां लगभग 73.39 प्रतिशत पुरुष एवं 53.33 प्रतिशत महिलाएं साक्षर हैं। पिछले कुछ वर्षों से बिहार में आर्थिक विकास का एक नया अध्याय जुड़ गया है जिसका प्रत्यक्ष प्रभाव यहाँ की विद्यालीय व्यवस्था पर पड़ा है।

प्रस्तुत शोधपत्र में बिहार के विद्यालीय ढांचे के विकास पर प्रकाश डालते हुए उन कार्यक्रमों पर दृष्टिपात किया गया है जो इस प्रदेश में शैक्षणिक माहौल को उन्नत बनाने में कारगर सिद्ध हुये हैं। साथ ही साथ वर्तमान परिप्रेक्ष्य में विद्यालयी व्यवस्था के कुछ महत्वपूर्ण आयामों का विश्लेषण किया गया है।

प्रस्तावना

भारतीय संघ के 28 राज्यों में राज्य बिहार की गिनती सर्वाधिक पिछड़े एवं अविकसित राज्यों में होती है। मानव विकास के सभी संकेतकों पर यह सबसे निचले पायदान पर है। शिक्षा भी एक ऐसा मानदंड है जिसके आधार पर किसी राज्य के विकास या मानव संसाधनों के गुणवत्ता की परख की जा सकती है। 2011 के आंकड़ों के अनुसार बिहार की साक्षरता दर 63.83% है जो कि इस देश के सर्वाधिक निरक्षर राज्य होने का सूचक है। यहां पुरुष एवं स्त्री और साक्षरता दर क्रमशः 73.39% और 53.33% है

* सहायक प्रोफेसर, संत जेवियर कॉलेज ऑफ एजुकेशन, दीघा घाट, पटना

** सह प्रोफेसर, कोटा मुक्त विश्वविद्यालय, कोटा, राजस्थान

जो कि राष्ट्रीय दर पुरुष साक्षरता दर (82.14%) एवं स्त्री साक्षरता दर (65.46%) से काफी कम है। परन्तु इतिहास के पन्नों को पलटने पर हम पाते हैं कि प्राचीन भारत में शिक्षा के तीन केन्द्र नालंदा, विक्रमशिला एवं उदन्तपुरी बिहार की ही मिट्टी पर स्थापित थे। ब्रिटिश काल में भी इस राज्य की शैक्षिक गति संतोषप्रद रही। 1917 ई. में पटना विश्वविद्यालय की स्थापना बिहार विद्यापीठ, पटना की स्थापना (अब नहीं है), 1938 में बुनियादी विद्यालयों की शुरुआत इन सभी ने इस राज्य के शैक्षिक ढांचे को सुदृढ़ किया। 24 मार्च, 1938 को इस राज्य के विधान परिषद में सर्वप्रथम सदस्य पुन्यदेव शर्मा ने मुफ्त एवं अनिवार्य शिक्षा की मांग करते हुए यह प्रस्ताव रखा कि यह शिक्षा प्रत्येक पुलिस थाने में कम से कम एक गांव में दी जानी चाहिए। 1949–1957 तक की अवधि में बिहार ही एक मात्र राज्य था जहां बुनियादी शिक्षा की व्यवस्था प्राथमिक स्तर से लेकर उच्चतर कक्षाओं तक थी। 1970 के दशक में इस प्रदेश की विद्यालीय शिक्षा में तीन निर्णायक मोड़ आये। प्रथम, 1976 में सभी प्राथमिक एवं मध्य विद्यालयों को सरकारी नियंत्रण के अधीन लाया गया। इन विद्यालयों के प्रबंध की डोर शिक्षा विभाग के हाथों में चली गई जिसके फलस्वरूप इन विद्यालयों में समुदाय एवं स्थानीय लोगों की भागीदारी कम होती चली गयी। द्वितीय कोठारी आयोग की रिपोर्ट के तर्ज पर इस राज्य में पहली बार 1977 ई. में 10+2+3 पद्धति को लागू किया गया इसके पूर्व कक्षा 11 के बाद की परीक्षा होती थी और विश्वविद्यालय स्तर पर स्नातक की पढ़ाई दो वर्ष के लिए होती थी। परन्तु नयी व्यवस्था के तहत दसवीं के बाद दो वर्षों तक इंटरमीडिएट की कक्षायें विश्वविद्यालय का ही अंग बनी रही। वर्तमान समय में इस राज्य में 494 इंटरमीडिएट विद्यालय ऐसे हैं जो डिग्री कॉलेज से जुड़े हुये हैं। तीसरा, 2 अक्टूबर, 1980 को सरकार के द्वारा सभी माध्यमिक विद्यालय को अपने अधीन कर लिया गया। इस नई व्यवस्था के तहत इन विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों की सेवाओं को सरकारी दर्जा प्राप्त हुआ। परन्तु शिक्षा पर स्थानीय नियंत्रण समाप्त होने से इन विद्यालयों का प्रबंधन कुप्रभावित हुआ। इन विद्यालयों को चलाने हेतु आवश्यक निर्णयों में सरकार पर निर्भरता बढ़ गई। सरकार के उदासीन रवैये की वजह से 90 के दशक में इस प्रदेश में एक भी नए माध्यमिक विद्यालय की स्थापना नहीं हुई।

1986 में नई शिक्षा नीति लागू होने के उपरांत भी इस प्रदेश के शैक्षिक परिदृश्य में कोई अमूल परिवर्तन नहीं हुआ। 1990 के पूर्व इस प्रदेश में सी.बी.एस.सी. के संबद्ध

विद्यालयों की संख्या नगण्य थी जबकि 1990 से 2005 के बीच इन विद्यालयों की संख्या में अप्रत्याशित वृद्धि हुई है। इसके मुख्यत: दो कारण बताये जा सकते हैं। प्रथम, सरकारी विद्यालयों में प्रशिक्षित शिक्षकों की कमी एवं सरकारी विद्यालयों का पाठ्यक्रम राष्ट्रीय पाठ्यक्रम के मानकों के अनुरूप न होना। स्वतंत्रता प्राप्ति के लगभग छह दशकों तक इस राज्य में शिक्षा के क्षेत्र में सिर्फ परिमाणात्मक वृद्धि हुई है। 1946-47 से 2008-09 तक प्राथमिक विद्यालयों की संख्या में 114 प्रतिशत, उच्च प्राथमिक विद्यालयों की संख्या में 1376 प्रतिशत, माध्यमिक दिद्यालयों की संख्या में 560 प्रतिशत की वृद्धि हुई है (रिपोर्ट आफ कॉमन स्कूल सिस्टम, 2007)।

विद्यालय शिक्षा के कार्यक्रम

''भारत का भविष्य कक्षाओं में निहित है'' कोठारी आयोग (1966) के वक्तव्य से इस देश की शैक्षिक व्यवस्था में विद्यालय की महत्ता स्पष्ट होती है। विद्यालय एक वह संस्था है जो गुणात्मक शिक्षा की प्राप्ति में अहम भूमिका निभाता है। इस प्रदेश का विद्यायलीय ढांचा व्यापक एवं जटिल है। 2006 में बदलते हुये राजनीतिक परिदृश्य में इस प्रदेश में विकास की एक नयी दिशा मिली है। इस परिवर्तन का प्रभाव शिक्षा के क्षेत्र पर भी पड़ा है। 2006-07 में 3273 करोड़ रुपया शिक्षा पर खर्च होने वाली राशि थी जबकि 2009-10 में यह बदल कर 5981 करोड़ रुपया हो गई। बिहार सरकार द्वारा प्रदेश में शिक्षा के स्तर को ऊँचा उठाने हेतु विद्यालयों में नामांकन व ठहराव की दर को बढ़ाने हेतु एक दर्जन से अधिक कार्यक्रम चलाये जा रहे हैं, वे इस प्रकार हैं:

मुख्यमंत्री पोशाक योजना : इस योजना के अंतर्गत राजकीय/राजकीय सहायता प्राप्त विद्यालय (अल्पसंख्यक विद्यालय सहित) के कक्षा 3 से 5 तक के छात्र-छात्राओं को रुपया नगद प्रदान किया जाता है। यह राशि एक सेट स्कूल पोशाक एवं एक जोड़ी जूते खरीदने के लिए दी जाती है। यह योजना 2009-10 से इस प्रदेश में संचालित है।

मुख्यमंत्री बालिका पोशाक योजना : इस योजना के अंतर्गत राजकीय/राजकीयकृत/ सहायता प्राप्त विद्यालय (अल्पसंख्यक विद्यालय सहित) के कक्षा 6 से 8वीं तक के छात्र-छात्राओं के पोशाक एवं शिक्षण सामग्री हेतु 700 रुपया प्रति छात्र की दर से नगद राशि विद्यालय शिक्षा समिति की ओर से प्रदान की जाती है। यह योजना 2008-09 से इस प्रदेश में संचालित है।

बिहार शताब्दी मुख्यमंत्री बालिका पोशाक योजना : इस प्रदेश में बालिकाओं को माध्यमिक शिक्षा की ओर आकृष्ट करने हेतु सरकारी विद्यालयों में अध्ययनरत कक्षा 9 से 12वीं तक की छात्राओं को पोशाक क्रय हेतु 1000 रुपया राशि प्रति छात्रा की दर से दी जाती है।

मुख्यमंत्री साइकिल योजना : इसके अंतर्गत इस प्रदेश के राजकीय/राजकीयकृत/प्रोजेक्ट माध्यमिक/मान्यता प्राप्त गैर सरकारी अल्पसंख्यक माध्यमिक विद्यालयों/अनुदानित अराजकीय प्रस्वीकृत मदरसा/संस्कृत एवं वित्त रहित माध्यमिक विद्यालयों में कक्षा में नामांकित छात्र-छात्राओं के लिये 2500 रुपया की दर से साईकिल उपलब्ध करायी जाती है। यह वित्तीय वर्ष 2008-09 योजना से संचालित है।

शैक्षणिक परिभ्रमण : इस योजना के अंतर्गत 10,000 रुपया की राशि प्रत्येक विद्यालय के शिक्षा समिति के बैंक में हस्तांतरित की जाती है। इस योजना का उद्देश्य छात्र-छात्राओं को इस राज्य के ऐतिहासिक, भौगोलिक एवं अन्य महत्वपूर्ण स्थलों, धरोहरों तथा विरासतों की जानकरी और जागरूकता प्रदान करने हेतु शैक्षणिक प्ररिभ्रमण की व्यवस्था करना है।

मध्याह्न भोजन योगना : विद्यालयों में छीजन रोकने, नामांकित बच्चों का ठहराव सुनिश्चित करने एवं बच्चों को कुपोषण से बचाने हेतु इस प्रदेश के सभी सरकारी विद्यालय सरकारी सहायता प्राप्त विद्यालयों, मदरसा, मक़तब एवं संस्कृत विद्यालयों में 1 जनवरी, 2005 से कक्षा 1 से 5 तक के छात्र-छात्राओं, 1 मार्च, 2008 से राज्य के सरकारी विद्यालय, सरकारी सहायता प्राप्त विद्यालयों, मदरसा मक़तब एवं संस्कृत विद्यालयों के कक्षा 6 से 8वीं तक के छात्र-छात्राओं एवं वित्तीय वर्ष 2010-11 से बाल श्रमिक विद्यालयों में नामांकित छात्र-छात्राओं को मध्याह्न भोजन उपलब्ध कराया जाता है।

मुख्यमंत्री बालिका प्रोत्साहन योजना : इस योजना के अंतर्गत राज्य के विद्यालयों से 10वीं कक्षा में प्रथम श्रेणी से उत्तीर्ण होने वाली सामान्य कोटि एवं पिछड़ा वर्ग-2 की छात्राओं को 1000 रुपया प्रति छात्रा की दर से प्रोत्साहन स्वरूप दिया जाता है।

राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान : इस अभियान का उद्देश्य माध्यमिक शिक्षा का सर्वव्यापीकरण है। इसके अंतर्गत 5 कि.मी. की परिधि में उच्च विद्यालय एवं 8 कि.मी. की परिधि में उच्च माध्यमिक विद्यालय की सुविधा उपलब्ध कराने का प्रावधान है।

इसके लिए राज्य के मध्य विद्यालयों को उच्च विद्यालय में एवं माध्यमिक विद्यालयों को उच्चतर माध्यमिक विद्यालय में उत्क्रमित किया जाता है।

बालिका छात्रावास निर्माण : यह एक केन्द्र प्रायोजित योजना है जिसका उद्देश्य बालिकाओं की शिक्षा को बढ़ावा देने हेतु प्रत्येक प्रखंड में छात्रावास की स्थापना करना है।

बालिका माध्यमिक शिक्षा प्रोत्साहन योजना : इस योजना के लाभान्वितों में आठवीं उत्तीर्ण सभी अनुसूचित जाति/जनजाति की छात्रायें तथा कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालय में आठवीं उत्तीर्ण सभी छात्रायें जिन्होंने कक्षा नवम में दाखिला लिया हो, आते हैं। इन योजना में 3000 रुपये की एकमुश्त राशि किसी सरकारी बैंक या पोस्ट आफिस में मियादी जमा के रूप में उन छात्राओं के खाते में जमा कर दी जाती हैं। इस जमा राशि को वे छात्राएं 18 वर्ष की उम्र होने पर ही निकाल सकती हैं।

मॉडल स्कूल : इस केन्द्र प्रायोजित योजना के तहत यह प्रावधान है कि प्रदेश में ऐसे विद्यालयों की स्थापना की जाये जिसमें केन्द्रीय विद्यालय की तरह शिक्षण अधिगम के संबंधित आधारभूत सुविधा हो। इन विद्यालयों का पाठ्यक्रम स्थानीय संस्कृति एवं वातावरण से जुड़ा होना चाहिए।

राज्य मेधा छात्रवृत्ति : इसके अंतर्गत प्रदेश के राजयकी/राजकीयकृत विद्यालयों में वर्ग 11वीं एवं 12वीं में अध्ययनरत मेधावी छात्र/छात्राओं (1400-1400) को क्रमशः 400 तथा 500 रुपया प्रतिमाह की दर से 10 माह के लिए छात्रवृत्ति दी जाती है। आई.आई. टी. प्रवेश परीक्षा में सफल छात्र-छात्राओं को 50,000 रुपया प्रति छात्र की दर से प्रोत्साहन छात्रवृत्ति दी जाती है।

विद्यालयों में आई.सी.टी. : माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत सभी छात्र-छात्राओं को कंप्यूटर शिक्षा प्रदान करने के लिए केन्द्र द्वारा प्रायोजित योजना के तहत 1000 माध्यमिक विद्यालयों में कंप्यूटर उपलब्ध कराने के साथ-साथ कंप्यूटर शिक्षा की व्यवस्था करने का प्रावधान है।

आई.ई.डी.एस.एस. योजना : इस योजना के अंतर्गत सरकारी, स्थानीय तथा सरकारी सहायता प्राप्त विद्यालयों में 14 वर्ष से अधिक के सभी विकलांग बच्चों जिन्होंने प्रारंभिक स्तर तक कक्षायें उत्तीर्ण कर ली हों तथा माध्यमिक स्तर की कक्षाओं (कक्षा 9 से 12 तक) में पढ़ रहे हों, उनके लिए शिक्षण अधिगम सामग्री तथा अन्य सुविधाएं

तालिका-1 मानकों के संदर्भ में बिहार में विद्यालयीय शिक्षा का प्रावधान

कसौटी	पालिसी मानक	आकलन का आधार	बिहार	भारत
जनसंख्या के सापेक्ष विद्यालय की उपलब्धता	कोई नहीं	प्रति 10 हजार जनसंख्या पर प्राथमिक विद्यालय	4.88	6.63
		प्रति 10 हजार जनसंख्या पर उच्च प्राथमिक विद्यालय	1.17	2.38
		प्रति 10 हजार जनसंख्या पर सीनियर सेकेंडरी विद्यालय	0.04	0.42
निवास क्षेत्र से दूरी	निवास क्षेत्र से 1 कि.मी. की दूरी पर प्राथमिक विद्यालय	1 कि.मी. की दूरी पर स्थित प्राथमिक विद्यालय रहित निवास क्षेत्र (%में)	11.08	13.04
	निवास क्षेत्र से 3 कि.मी. की दूरी पर उच्च प्राथमिक विद्यालय	3 कि.मी. की दूरी पर स्थित उच्च प्राथमिक विद्यालय रहित निवास क्षेत्र (%में)	18.90	21.89
प्रत्येक विद्यालयों में शिक्षकों की संख्या	प्रति प्राथमिक विद्यालय कम से कम	दो यो उससे कम शिक्षकों वाले विद्यालय (%में)	83.01	59.48
प्रत्येक विद्यालय में क्लास रूम की संख्या	प्रति प्राथमिक विद्यालय में कम से कम तीन क्लास रूम	दो या उससे कम क्लास रूम वाले विद्यालय (%में)	67.00	37.00
	प्रति उच्च प्राथमिक विद्यालय में कम से कम तीन क्लास रूम	दो या उससे कम क्लास रूम वाले विद्यालय (%में)	13.57	9.85
प्राथमिक विद्यालय के सापेक्ष उच्च प्राथमिक विद्यालय	प्रति दो प्राथमिक विद्यालय पर एक उच्च प्राथमिक विद्यालय	प्राथमिक विद्यालय एवं उच्च प्राथमिक विद्यालय का अनुपात	4.14	2.66
छात्रों की संख्या के सापेक्ष शिक्षकों की उपलब्धता	प्रति 30 छात्रों पर एक शिक्षक	प्राथमिक विद्यालय	83	42
		उच्च प्राथमिक विद्यालय	73	34
		माध्यमिक विद्यालय	48	30
		उच्चतर माध्यमिक विद्यालय	30	35

स्रोत: रिपोर्ट ऑफ कॉमन स्कूल सिस्टम, 2007, बिहार

मुहैया कराने का प्रावधान है।

ऑल इंडिया स्कूल सर्वे, एन.सी.ई.आर.टी, 2009 के अनुसार में बिहार में कुल सत्तर हजार से अधिक विद्यालय हैं जिसमें 68,489 सरकारी विद्यालय (97.80%) 280 स्थानीय निकाय द्वारा संचालित विद्यालय (0.39%), 1060 सहायता प्राप्त निजी विद्यालय (1.4%) तथा 194 गैर सहायता प्राप्त निजी विद्यालय (1.51%) है।

	तालिका–2
विद्यालय	**विद्यालयों की संख्या**
प्राथमिक	43286 (61.81%)
उच्च प्राथमिक	22775 (32.52%)
माध्यमिक	2700 (3.85%)
उच्चतर माध्यमिक	1261 (1.8%)
कुल संख्या	70023

स्रोतः ऑल इंडिया स्कूल एजूकेशन सर्वे, 2009, एन.सी.ई.आर.टी. नई दिल्ली

उपर्युक्त तालिका–2 से यह स्पष्ट होता है कि बिहार प्रदेश में प्राथमिक विद्यालयों की संख्या उच्च प्राथमिक विद्यालयों से दुगुनी से अधिक है। परन्तु माध्यमिक एवं उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों की संख्या कम है।

विद्यालय में भौतिक संसाधनों की उपलब्धता

भौतिक संसाधनों के अभाव में शिक्षण अधिगम प्रक्रिया सुचारु रूप से नहीं चलायी जा सकती है। अधिक प्रक्रिया में छात्रों की रूचि जागृत करने एवं उनकी सहभागिता सुनिश्चित करने हेतु यह जरूरी है कि विद्यालय में आवश्यक भौतिक संसाधन मौजूद हों।

तालिका–3 से यह स्पष्ट है कि बिहार प्रदेश में प्राथमिक स्तर पर भवन रहित विद्यालयों का प्रतिशत देश भर के भवन रहित प्राथमिक विद्यालयों से 13.73% अधिक है। विद्यालय परिसर में पेय जल की सुविधा, प्रयोग में आने वाले शौचालय एवं खेल के मैदान, इन तीनों ही सुविधाओं के संदर्भ में इस प्रदेश के प्राथमिक विद्यालयों का

तालिका-3

विद्यालय/सुविधाएं	भारत				बिहार			
	प्राथमिक (%)	उच्च प्राथमिक %	माध्यमिक %	उच्चतर माध्यमिक %	प्राथमिक %	उच्च प्राथमिक %	माध्यमिक %	उच्चतर माध्यमिक %
भवन रहित विद्यालय	1.72	0.50	0.65	0.28	15.45	0.80	0.33	0.55
विद्यालय परिसर में पेयजल की सुविधा	80.42	86.35	91.38	96.41	75.06	91.41	93.22	95.16
विद्यालय परिसर में प्रयोग में आने वाले शौचालय की उपलब्धता	70.33	79.07	84.48	93.55	31.46	48.72	66.85	72.02
खेल के मैदान	47.49	59.15	75.34	80.43	31.15	46.98	72.37	77.09

स्रोत ऑल इंडिया स्कूल एजूकेशन सर्वे, 2009, एन.सी.ई.आर.टी. नई दिल्ली

प्रतिशत पूरे देश के प्राथमिक विद्यालयों की तुलना में 5.36%, 38.87% एवं 16.34% कम हैं। उच्च प्राथमिक स्तर पर भवन रहित विद्यालय, विद्यालय परिसर में प्रयोग में आने वाले शौचालय की उपलब्धता एवं खेल के मैदान, इन तीन सुविधाओं के आधार पर भी इस प्रदेश के विद्यालय देशभर के इसी स्तर के विद्यालयों की तुलना में क्रमशः 0. 30%, 30.35% तथा 12.17% पीछे हैं। माध्यमिक स्तर पर भवन रहित विद्यालय एवं विद्यालय परिसर में पेयजल की सुविधा, इन दोनों ही सुविधाओं के उपर दिये गये चारों सुविधाओं के संदर्भ में उच्चतर माध्यमिक स्तर पर इस प्रदेश के विद्यालय पूरे देश के विद्यालयों की तुलना में क्रमशः .05%, 1.25%, 21.53% तथा 3.34% पीछे हैं।

नामांकनः द इकोनोमिक सर्वे ऑफ बिहार, 2011 के अनुसार बिहार में 2002-2009 की अवधि में प्रारंभिक स्तर पर नामांकन में 9.3 प्रतिशत की वृद्धि दर्ज की गयी

तालिका-4
विद्यालयों में नामांकन

स्तर	भारत			बिहार		
	कुल नामांकन	छात्र	छात्रायें	कुल नामांकन	छात्र	छात्रायें
प्राथमिक	77,648,401	39624106 (51.04%)	38,024,295 (48.96%)	7,956,224	4,109,655 (51.66%)	3,836,569 (48.34%)
उच्च प्राथमिक	65,605,730	34221778 (52.17%)	31,383,952 (47.83%)	10,379,328	5,454,888 (52.56%)	4,924,440 (47.44%)
माध्यमिक	36,058,548	19018560 (52.75%)	17,039,988 (47.25%)	1,357,607	749,698 (55.25%)	607,352 (44.75%)
उच्चतर माध्यमिक	47,406,853	25995876 (54.84%)	21,410,977 (45.16%)	1,039,449	611258 (58.81%)	428,191 (41.19%)

स्रोतः ऑल इंडिया स्कूल एजुकेशन सर्वे, 2009, एन.सी.ई.आर.टी., नई दिल्ली

है। इसी अवधि में प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक स्तर पर नामांकन में क्रमशः 7.6% एवं 19.6% की वृद्धि हुई है।

तालिका-4 के विश्लेषण से यह ज्ञात होता है कि बिहार प्रदेश में शिक्षा के सभी स्तरों पर छात्र-छात्राओं के नामांकन में विषमता है। प्राथमिक स्तर पर छात्राओं का नामांकन छात्रों से 3.32% कम है। उच्च प्राथमिक स्तर पर छात्र, छात्राओं से 5.12% आगे हैं। सबसे अधिक अंतर उच्चतर माध्यमिक स्तर पर हैं। इस स्तर पर छात्र-छात्राओं से 17.62% ज्यादा है। राष्ट्रीय स्तर पर छात्राओं के नामांकन प्रतिशत की तुलना करने पर यह पाते हैं कि प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक स्तर पर बिहार प्रदेश में छात्राओं का नामांकन प्रतिशत कमोवेश बराबर है। परंतु माध्यमिक एवं उच्चतर माध्यमिक, दोनों ही स्तरों पर बिहार प्रदेश में छात्राओं का नामांकन प्रतिशत (क्रमशः 44.75% एवं 41.19%) राष्ट्रीय स्तर पर नामांकन प्रतिशत (क्रमशः 47.25% एवं (45.16%) से काफी कम है।

छीजन: यद्यपि बिहार प्रदेश में पिछले एक दशक में विद्यालयों में नामांकन बढ़ा है, परंतु छीजन की समस्या अब भी बनी हुई है। नीचे दी गई तालिका-5 को देखने से पता चलता है कि पिछले डेढ़ दशक में बिहार प्रदेश में शिक्षा के तीनों स्तरों

तालिका-5

विद्यालयों की छीजन (Dropout)

	राष्ट्रीय स्तर (% में)			**बिहार (% में)**		
वर्ष	**I-V**	**I-VIII**	**I-X**	**I-V**	**I-VIII**	**I-X**
1991-92	64.40	79.38	85.02	42.00	58.67	71.51
2003-04	59.00	78.00	NA	31.50	52.30	NA
2008-09	34.65	58.33	81.50	24.93	42.25	55.88

स्रोत: एजुकेशन इन इंडिया, अंक 1991-92, 1998-99 तथा चयनित शैक्षिक सांख्यिकी, 2003-04 और 2008-09, मानव संसाधन विकास मंत्रलय, नई दिल्ली

पर छीजन की दर में कमी आयी है। छीजन की दर में सबसे ज्यादा कमी प्राथमिक स्तर पर (17.07%) दर्ज की गई है। राष्ट्रीय स्तर पर तुलना करने पर यह पाते हैं कि तीनों समयावधि में बिहार प्रदेश में विद्यालीय शिक्षा के सभी स्तरों में छीजन की दर कम है।

तालिका-6

शुद्ध उपस्थिति अनुपात

	शुद्ध उपस्थिति अनुपात (कक्षा 1 से 8वीं तक)	
	भारत	**बिहार**
छात्र	78	87
छात्रा	70	84
कुल	74	86

स्रोत: राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वे रिपोर्ट, 2005-06

सुझाव

शिक्षा के क्षेत्र में बिहार का इतिहास वर्तमान की तुलना में बहुत गौरवशाली रहा है। बिहार सरकार द्वारा प्रदेश में शिक्षा के स्तर को ऊँचा उठाने हेतु एवं विद्यालयों में नामांकन व ठहराव की दर को बढ़ाने हेतु एक दर्जन से अधिक कार्यक्रम चलाये जा रहे हैं, जिनको प्रभावशाली ढंग से क्रियान्वयन करने की आवश्यकता है।

बिहार प्रदेश के विद्यालीय ढांचे के विकास पर यदि प्रभावशाली ढंग से ध्यान दिया जाए तो बिहार में शैक्षणिक माहौल को और उन्नत बनाया जा सकता है। साथ ही साथ वर्तमान परिप्रेक्ष्य में विद्यालीय व्यवस्था में आमूल–चूल परिवर्तन किये जाने की अत्यंत आवश्यकता है।

बिहार में प्राथमिक व माध्यमिक विद्यालयीय शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए बहुत से कार्यक्रम चलाये जा रहे हैं। इन कार्यक्रमों को और अधिक त्वरित करने की आवश्यकता है जिससे कि राष्ट्रीय धरातल पर बिहार की शैक्षिक स्थिति में और सुधार की स्थिति बने।

अधिगम प्रक्रिया में छात्रों की रूचि जागृत करने एवं उनकी सहभागिता सुनिश्चित करने हेतु यह जरूरी है कि विद्यालय में भौतिक संसाधनों की प्रर्याप्त उपलब्ध्ता हो। यद्यपि सर्व शिक्षा अभियान व राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान के तहत बिहार के विद्यालयों में भौतिक संसाधनों की अप्रत्याशित वृद्धि हुई है, लेकिन अभी भी इन संसाधनों में वृद्धि की आवश्यकता है। यह सर्वथा सत्य है कि भौतिक संसाधनों के अभाव में शिक्षण अधिगम प्रक्रिया को सुचारु रूप से चलाया नहीं जा सकता है।

यद्यपि बिहार प्रदेश में पिछले एक दशक में विद्यालयों में नामांकन बढ़ा है, फिर भी प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक स्तर पर नामांकन प्रक्रिया को और अधिक गति देने की आवश्यकता है। पिछले डेढ दशक में बिहार प्रदेश में शिक्षा के तीनों स्तरों पर छीजन की दर में कमी आयी है। फिर भी यहां छीजन की समस्या बनी हुई है। छीजन दर में सबसे ज्यादा कमी प्राथमिक स्तर पर (17.0%) दर्ज की गई है। प्राथमिक तौर पर इस समस्या को दूर करने हेतु प्रभावशाली कदम उठाने की आवश्यकता है।

निष्कर्ष: आर.टी.ई. एक्ट 2009 के सभी प्रावधानों को ध्यान में रखकर यदि प्राथमिक शिक्षा का नियोजन व उनके अनुरूप क्रियान्वयन किया जाय तो बिहार की शिक्षा अपने गौरवमयी अतीत को फिर से दुहराने में कामयाब हो सकेगी।

संदर्भ ग्रंथ

ऑल इंडिया स्कूल एजुकेशन सर्वे, 2009, एन.सी.ई.आर.टी., नई दिल्ली।

एजुकेशन इन इंडिया, अंक 1991-92, 1998-99

चयनित शैक्षिक सांख्यिकी, 2003-04 - 2008-09 मानव संसाधन विकास मंत्रालय, नई दिल्ली।

रिपोर्ट ऑफ कॉमन स्कूल सिस्टम, 2007, बिहार

राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वे रिपोर्ट, 2005-06

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 20, अंक 1, अप्रैल 2013

ग्रामीण-शहरी वित्तपोषित और स्ववित्तपोषित बी.एड. कालेजों के प्रशिक्षणार्थियों द्वारा व्यक्त मूल्यों का तुलनात्मक अध्ययन

वी.के. राय* और आर.पी. राय*

भूमिका

सन्तुलित एवं प्रभावशाली व्यक्त्वि का निर्माण अनेक तत्वों से होता है। व्यक्त्वि एवं व्यवहार की अन्योन्याश्रिता सर्वमान्य है। व्यक्त्वि का निर्माण जीवन मूल्यों से होता है। मूल्यों के विकास में वातावरण की भूमिका महत्वपूर्ण मानी जाती है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति में छात्र के व्यवहारिक, सृजनात्मक एवं उत्पादनशील व्यक्तित्व पर विशेष जोर दिया गया। श्रेष्ठ क्रियाशीलता तभी संभव है जबकि हमारे बी.एड. के प्रशिक्षणार्थी अधिकतम ज्ञान, मूल्य व्यवहार का परिमार्जन आदि धारित करते हुए समाज में अच्छे शिक्षक बनें।

मूल्य ऐसी आचरण संहिता का सर्वगुण है जिससे व्यक्ति अपने निश्चित लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु अपनी जीवन पद्धति का निर्माण करता है तथा अपने व्यक्तित्व का विकास करता है। इसमें मनुष्य की धारणाएँ, विचार, विश्वास, मनोवृति, आस्था सभी चीजें समाहित हैं। ये दूसरी ओर उसकी संस्कृति एवं परम्परा द्वारा क्रमशः निस्सृत एवं परिपोषित होते हैं।

शिक्षा स्वयं एक मूल्य है और यह विडम्बना ही है कि उसे मूल्यों का सहारा लेना पड़ रहा है। मूल्य विहीन शिक्षा की कल्पना नही की जा सकती। यह तो तथाकथित भौतिकवादी दृष्टि की देन है कि उसने शिक्षा को मूल्यविहीन बनाया और उसके दुष्परिणाम समाज के सामने आ रहे हैं।

---

* आमघाट, नई कालोनी, गाजीपुर (उ.प्र.) 233001

हमारे वर्तमान प्रशिक्षणार्थी जो बी.एड. में अध्ययनरत हैं और भावी अध्यापक हैं उनके सामर्थ्य निर्माण की प्रक्रिया में यह निश्चित करना महत्वपूर्ण है कि वे शिक्षा मूल्य के आशय को समझने योग्य हो जायें। वर्तमान सन्दर्भ में मूल्यों को व्याख्यायित कर सकें तथा अपने विद्यार्थियों के मन में बिठाने के लिये रणनीतियों का विकास कर सकें। यह तभी संभव होगा जब वे स्वयं इन मूल्यों को आदर्श स्वरूप में स्वयं धारण कर उन्हें आत्मसात करेगें तभी वे इन मूल्यों को आगे अपने शिष्यों को हस्तान्तरित करने में तथा उन्हें इन मूल्यों पर चलने की ओर प्रेरित कर सकेंगे।

सृजनात्मकता प्राय: सभी प्राणियों में पायी जाती है। यह अवश्य है कि किसी में कम किसी में अधिक। समस्त व्यवसायों, क्षेत्रों में सृजनशील व्यक्ति होते हैं। किन्तु यह आवश्यक नहीं कि सृजनशील व्यक्ति हर क्षेत्र में उतना ही सक्रिय हो। बी.एड. के प्रशिक्षाणार्थियों हेतु सृजनात्मकता अत्यन्त आवश्यक तत्व है। जब तक कि ये भावी शिक्षक सृजनशील नहीं होंगे ये अपने शिक्षण कार्य को नित्य नवीन व परिमार्जित नहीं कर पायेंगे। अत्यन्त तीव्र गति से बढ़ते हुए वैज्ञानिक तकनीकों तथा औद्योगिक विकास ने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को इतना जटिल तथा समस्याओं से युक्त बना दिया है कि आज प्रत्येक क्षेत्र में सृजनात्मकता की आवश्यकता का अनुभव होने लगा है। आज का प्रतियोगितापूर्ण संसार एवं समस्यायुक्त समाज सृजनशील मस्तिष्क चाहता है जबकि बी.एड. के प्रशिक्षणार्थी स्वयं सृजनशील नहीं होंगे वे समाज की इस वांछित आवश्यकता की पूर्ति कर अपने छात्रों को सृजनशील प्रवृत्ति प्रदान करने में सक्षम नहीं हो सकेंगे।

शिक्षा से जुड़े व्यक्ति के लिये यह महती आवश्यकता है कि वह सदैव अध्ययनशील रहे। ये भावी शिक्षक जिन पर समाज को शिक्षित और मूल्यवान बनाने का दायित्व है जब तक अपने अन्दर उदात्त मूल्य विकसित नहीं करेंगे तब तक ये सही दिशा में शिक्षण कार्य करने में सफल नहीं होंगें वर्तमान अध्ययन में ग्रामीण एवं शहरी वित्तपोषित और स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजो के प्रशिक्षणार्थियों के मूल्यों का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है।

शोध समस्या

अध्ययन की समस्या ''ग्रामीण व शहरी वित्तपोषित व स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के प्रशिक्षणार्थियों द्वारा व्यक्त मूल्यों का तुलनात्मक अध्ययन'' है।

अध्ययन के उद्देश्य

- ग्रामीण व शहरी वित्तपोषित व स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के प्रशिक्षणार्थियों के सौन्दर्यात्मक मूल्यों का तुलनात्मक अध्ययन करना।
- ग्रामीण व शहरी वित्तपोषित व स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के प्रशिक्षणार्थियों के समाजिक मूल्यों का तुलनात्मक अध्ययन करना।
- ग्रामीण व शहरी वित्तपोषित व स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के प्रशिक्षणार्थियों के सृजनात्मक मूल्यों का तुलनात्मक अध्ययन करना।
- ग्रामीण व शहरी वित्तपोषित व स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के प्रशिक्षणार्थियों के आर्थिक मूल्यों का तुलनात्मक अध्ययन करना।
- ग्रामीण व शहरी वित्तपोषित व स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के प्रशिक्षणार्थियों के मानवीय मूल्यों का तुलनात्मक अध्ययन करना।
- ग्रामीण व शहरी वित्तपोषित व स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के प्रशिक्षणार्थियों के राजनैतिक मूल्यों का तुलनात्मक अध्ययन करना।
- ग्रामीण व शहरी वित्तपोषित व स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के प्रशिक्षणार्थियों के धार्मिक मूल्यों का तुलनात्मक अध्ययन करना।
- ग्रामीण व शहरी वित्तपोषित व स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के प्रशिक्षणार्थियों के ज्ञानात्मक मूल्यों का तुलनात्मक अध्ययन करना।

परिकल्पनाएं

- ग्रामीण व शहरी वित्तपोषित व स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के प्रशिक्षणार्थियों के सौन्दर्यात्मक मूल्यों में कोई सार्थक अन्तर नही है।
- ग्रामीण व शहरी वित्तपोषित व स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के प्रशिक्षणार्थियों के सामाजिक मूल्यों में कोई सार्थक अन्तर नही है।
- ग्रामीण व शहरी वित्तपोषित व स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के प्रशिक्षणार्थियों के सृजनात्मक मूल्यों में कोई सार्थक अन्तर नही है।
- ग्रामीण व शहरी वित्तपोषित व स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के प्रशिक्षणार्थियों के आर्थिक मूल्यों में कोई सार्थक अन्तर नही है।

- ग्रामीण व शहरी वित्तपोषित व स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के प्रशिक्षणार्थियों के मानवीय मूल्यों में कोई सार्थक अन्तर नही है।
- ग्रामीण व शहरी वित्तपोषित व स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के प्रशिक्षणार्थियों के राजनैतिक मूल्यों में कोई सार्थक अन्तर नही है।
- ग्रामीण व शहरी वित्तपोषित व स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के प्रशिक्षणार्थियों के धार्मिक मूल्यों में कोई सार्थक अन्तर नही है।
- ग्रामीण व शहरी वित्तपोषित व स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के प्रशिक्षणार्थियों के ज्ञानात्मक मूल्यों में कोई सार्थक अन्तर नही है।

अध्ययन विधि

वर्तमान अध्ययन की विधि सर्वेक्षण विधि है। वर्तमान वैज्ञानिक युग में हमारे शैक्षिक, आर्थिक एवं सामाजिक जीवन में शोध का विशेष महत्व है। समाज और राष्ट्र की प्रगति को शोध के परिणामों द्वारा पहचाना जाता है, क्योंकि समाज और राष्ट्र की मूल समस्याओं का समाधान शोधकार्यों द्वारा किया जाता है। शोध कार्यों द्वारा ज्ञान वृद्धि के साथ मानव विकास तथा कल्याण को महत्व दिया जाता है।

जनसंख्या

प्रस्तुत अध्ययन गोरखपुर मण्डल के ग्रामीण एवं शहरी वित्त पोषित व स्ववित्तपोषित बी. एड. कॉलेजों के प्रशिक्षणार्थियों से सम्बन्धित है। गोरखपुर मण्डल उत्तर प्रदेश राज्य के मण्डलों में से एक है, जिसमें 4 जिले– गोरखपुर, देवरिया, कुशीनगर एवं महाराजगंज सम्मिलित हैं।

न्यादर्श

प्रस्तुत अध्ययन में गोरखपुर मण्डल की सीमा में आने वाले बी.एड. कॉलेजों से कुल 500 प्रशिक्षणार्थियों का चयन किया गया है, जिनमें 250 पुरुष प्रशिक्षणार्थी महिला प्रशिक्षणार्थी सम्मिलित हैं। इन दोनों वर्गो में से प्रत्येक में 125 स्ववित्तपोषित कॉलेजों के तथा 125 वित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के प्रशिक्षणार्थी सम्मिलित हैं। शोधार्थी ने अपने न्यादर्श के चयन में यह प्रयास किया है कि न्यादर्श में प्रत्येक जिले से एक वित्तपोषित एवं एक स्ववित्तपोषित कॉलेजों का चयन अवश्य हो। अध्ययन के लिए राम गुलाब राय पी.जी. कॉलेज भाटपार रानी, देवरिया, बु. पी.जी. कॉलेज कुशीनगर,

किसान महाविद्यालय पैकौली हाटा, कुशीनगर, जवाहरलाल नेहरू पी.जी. कॉलेज, महाराजगंज, राजीव गांधी पी.जी. कॉलेज पैसिया महाराजगंज, राजीव गांधी पी.जी. कॉलेज पैसिया महाराजगंज दिग्विजय नाथ पी.जी. कॉलेज, गोरखपुर एवं द्रौपदी देवी त्रिपाठी पी.जी. कॉलेज रूद्रपुर खजनी, गोरखर के प्रशिक्षणार्थियों का चयन उपस्थिति एवं आकस्मिकता के आधार पर किया गया जिनके चयन में दैव निदर्शन की विधि को अपनाया गया है। समस्त जनसंख्या में कुल 500 अध्यापकों का चयन न्यादर्श के रूप में किया गया है।

क्षेत्र	ग्रामीण		शहरी		योग
	अध्यापक	अध्यापिकाएं	छात्रा अध्यापक	छात्रा अध्यापिकाएं	
वित्तपोषित	63	62	62	63	250
स्ववित्तपोषित	62	63	63	62	250
योग	125	125	125	125	500

शोध उपकरण

प्रस्तुत शोध में निम्नलिखित उपकरण का प्रयोग किया गया है-ग्रामीण एवं शहरी वित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के प्रशिक्षणार्थियों के द्वारा व्यक्त मूल्यों के प्रति वरीयता स्तर को ज्ञात करने के लिए डा बीनाशाह द्वारा निर्मित 'आठ मूल्य स्केल' का प्रयोग किया गया है।

सीमांकन

प्रस्तुत शोध कार्य का क्षेत्र बहुत विस्तृत हो सकता है। शिक्षा से संबंधित नवीन शोध कार्यों को संकुचित घेरे में नहीं रखा जा सकता। अतः इस शोध कार्य का अध्ययन क्षेत्र उत्तर प्रदेश या पूरा भारतवर्ष हो सकता है लेकिन समय, शक्ति, श्रम, धन, की एक सीमा में बंधे होने के कारण तथा अध्ययन की सुविधा को ध्यान में रखते हुए इस विषय का क्षेत्र गोरखपुर मण्डल की सीमा में आने वाले सभी बी.एड. कॉलेजों के प्रशिक्षणार्थियों तक सीमित किया गया है।

निष्कर्ष

ग्रामीण व शहरी वित्तपोषित व स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के प्रशिक्षणार्थियों के सौन्दर्यात्मक मूल्यों सम्बन्धी निष्कर्ष।

- ग्रामीण वित्तपोषित व स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के प्रशिक्षणार्थियों के सौन्दर्यात्मक मूल्य का स्तर शहरी वित्तपोषित–स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के प्रशिक्षणार्थियों की तुलना में निम्न है। ग्रामीण वित्तपोषित–स्ववितपोषित बी.एड. कॉलेजों के प्रशिक्षणार्थी सौन्दर्यात्मक मूल्य को शहरी वित्तपोषित–स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के प्रशिक्षणार्थियों की तुलना में कम वरीयता देते हैं। इनका सांख्यिकीय रूप से अन्तर सार्थक नहीं है।
- ग्रामीण वित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के प्रशिक्षणार्थियों के सौन्दर्यात्मक मूल्य का स्तर शहरी वित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के प्रशिक्षाणार्थियों की तुलना में कम है। ग्रामीण वित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के प्रशिक्षणार्थी सौन्दर्यात्मक मूल्य को शहरी वित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के प्रशिक्षणार्थियों की तुलना में कम वरीयता देते हैं। इनका सांख्यिकीय रूप से अन्तर सार्थक नही है।
- ग्रामीण वित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के प्रशिक्षणार्थियों के सौन्दर्यात्मक मूल्य का स्तर शहरी वित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के प्रशिक्षाणार्थियों की तुलना में कम है। ग्रामीण वित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के प्रशिक्षणार्थी सौन्दर्यात्मक मूल्य को शहरी वित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के प्रशिक्षणार्थियों की तुलना में कम वरीयता देते हैं। ग्रामीण स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के प्रशिक्षणार्थी सौन्दर्यात्मक मूल्य को शहरी स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के प्रशिक्षणार्थियों की तुलना में कम वरीयता देते हैं। इनका सांख्यिकीय रूप से अन्तर सार्थक नहीं है।
- ग्रामीण व शहरी वित्तपोषित–स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के पुरूष प्रशिक्षणार्थियों के सौन्दर्यात्मक मूल्य का स्तर ग्रामीण व शहरी वित्तपोषित– ‘स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के महिला प्रशिक्षणार्थियों की तुलना में अधिक है। ग्रामीण व शहरी वित्तपोषित स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के पुरूष प्रशिक्षणार्थी सौन्दर्यात्मक मूल्य को ग्रामीण व शहरी वित्तपोषित–स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के महिला प्रशिक्षणर्थियों की तुलना में अधिक वरीयता देते हैं। इनका सांख्यिकीय रूप से अन्तर सार्थक नहीं है।

- ग्रामीण वित्तपोषित-स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के पुरूष प्रशिक्षणार्थियो के सौन्दर्यात्मक मूल्य का स्तर शहरी वित्तपोषित-स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजो के पुरुष प्रशिक्षणार्थियों की तुलना कम है। ग्रामीण वित्तपोषित-स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के पुरुष प्रशिक्षणार्थी सौन्दर्यात्मक मूल्य को शहरी वित्तपोषित-स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के पुरुष प्रशिक्षणार्थियों की तुलना में कम वरीयता देते हैं। इनका सांख्यिकीय रूप से अन्तर सार्थक नहीं है।

- ग्रामीण वित्तपोषित-स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के महिला प्रशिक्षणार्थियों के सौन्दर्यात्मक मूल्य का स्तर शहरी वित्तपोषित-स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के महिला प्रशिक्षणार्थियों की तुलना में कम है। ग्रामीण वित्तपोषित-स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के महिला प्रशिक्षणार्थी सौन्दर्यात्मक मूल्य को शहरी वित्तपोषित-स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के महिला प्रशिक्षणार्थियों की तुलना में कम वरीयता देते हैं। इनका सांख्यिकीय रूप से अन्तर सार्थक नहीं है।

- ग्रामीण वित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के पुरुष प्रशिक्षणार्थियों के सौन्दर्यात्मक मूल्य का स्तर शहरी वित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के पुरुष प्रशिक्षणार्थियों की तुलना में कम है। ग्रामीण वित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के पुरुष प्रशिक्षणार्थी सौन्दर्यात्मक मूल्य को शहरी वित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के पुरुष प्रशिक्षणार्थियों की तुलना मे कम वरीयता देते हैं। इनका सांख्यिकीय रूप से अन्तर सार्थक नहीं है।

- ग्रामीण वित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के महिला प्रशिक्षणार्थियों के सौन्दर्यात्मक मूल्य का स्तर शहरी वित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के महिला प्रशिक्षणार्थियों की तुलना में कम है। ग्रामीण वित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के महिला प्रशिक्षणार्थी सौन्दर्यात्मक मूल्य को शहरी वित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के महिला प्रशिक्षणार्थियों की तुलना में कम वरीयता देते हैं। इनका सांख्यिकीय रूप से अन्तर सार्थक नहीं है।

- ग्रामीण स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के पुरुष प्रशिक्षणार्थियों के सौन्दर्यात्मक मूल्य का स्तर शहरी स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के पुरुष प्रशिक्षणार्थियों की तुलना में कम हैं। स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के पुरुष प्रशिक्षिणार्थी सौन्दर्यात्मक मूल्य को शहरी स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के पुरुष प्रशिक्षणार्थियों की तुलना में कम वरीयता देते हैं। इनका सांख्यिकीय रूप से अन्तर सार्थक नहीं है।

- ग्रामीण वित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के महिला प्रशिक्षणार्थियों के सौन्दर्यात्मक मूल्य का स्तर शहरी वित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के महिला प्रशिक्षणार्थियों की तुलना में कम है। ग्रामीण वित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के महिला प्रशिक्षणार्थी सौन्दर्यात्मक मूल्य को शहरी वित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के महिला प्रशिक्षणार्थियों की तुलना में कम वरीयता देते हैं। इनका सांख्यिकीय रूप से अन्तर सार्थक नहीं है।
- हमारी उपकल्पना ''ग्रामीण व शहरी वित्तपोषित व स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के प्रशिक्षणार्थियों के सौन्दर्यात्मक मूल्यों के कोई सार्थक अन्तर नहीं है'' प्रामाणिक सिद्ध होती है।
- ग्रामीण व शहरी वित्तपोषित व स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के प्रशिक्षणार्थियों के सामाजिक मूल्यं सम्बन्धी निष्कर्ष
- ग्रामीण वित्तपोषित व स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के प्रशिक्षणार्थियों के सामाजिक मूल्य का स्तर शहरी वित्तपोषित–स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के प्रशिक्षणार्थियों की तुलना में उच्च है। ग्रामीण वित्तपोषित–स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के प्रशिक्षणार्थी सामाजिक मूल्य को शहरी वित्तपोषित–स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के प्रशिक्षणार्थियों की तुलना में कम वरीयता देते है। इनका सांख्यिकीय रूप से अन्तर सार्थक नहीं है।
- ग्रामीण वित्तपोषित व स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के प्रशिक्षणार्थियों के सामाजिक मूल्य का स्तर शहरी वित्तपोषित–स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के प्रशिक्षणार्थियों की तुलना में कम है। ग्रामीण वित्तपोषित–स्ववितपोषित बी.एड. कॉलेजों के प्रशिक्षणार्थी सामाजिक मूल्य को शहरी वित्तपोषित–स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के प्रशिक्षणार्थियों की तुलना में कम वरीयता देते है। इनका सांख्यिकीय रूप से अन्तर सार्थक नहीं है।
- ग्रामीण वित्तपोषित व स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के प्रशिक्षणार्थियों के सामाजिक मूल्य का स्तर शहरी वित्तपोषित–स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के प्रशिक्षणार्थियों की तुलना में अधिक है। ग्रामीण वित्तपोषित–स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के प्रशिक्षणार्थी सामाजिक मूल्य को शहरी वित्तपोषित–स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के प्रशिक्षणार्थियों की तुलना में कम वरीयता देते है। इनका सांख्यिकीय रूप से अन्तर सार्थक नहीं है।
- ग्रामीण व शहरी वित्तपोषित–स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के पुरुष प्रशिक्षणार्थियों

के सामाजिक मूल्य का स्तर ग्रामीण व शहरी वित्तपोषित- 'स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के महिला प्रशिक्षणार्थियों की तुलना में अधिक है। ग्रामीण व शहरी वित्तपोषित. स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के पुरुष प्रशिक्षणार्थी सामाजिक मूल्य को ग्रामीण व शहरी वित्तपोषित-स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के महिला प्रशिक्षणार्थियों की तुलना में अधिक वरीयता देते हैं। इनका सांख्यिकीय रूप से अन्तर सार्थक नहीं है।

- ग्रामीण वित्तपोषित व स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के पुरुष प्रशिक्षणार्थियों के सामाजिक मूल्य का स्तर शहरी वित्तपोषित-स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के पुरुष प्रशिक्षणार्थियों की तुलना में अधिक है। ग्रामीण वित्तपोषित-स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के पुरुष प्रशिक्षणार्थी सामाजिक मूल्य को शहरी वित्तपोषित-स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के पुरूष प्रशिक्षणार्थियों की तुलना में अधिक वरीयता देते है। इनका सांख्यिकीय रूप से अन्तर सार्थक नहीं है।
- ग्रामीण वित्तपोषित व स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के महिला प्रशिक्षणार्थियों के सामाजिक मूल्य का स्तर शहरी वित्तपोषित-स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के महिला प्रशिक्षणार्थियों की तुलना में अधिक है। ग्रामीण वित्तपोषित-स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के महिला प्रशिक्षणार्थी सामाजिक मूल्य को शहरी वित्तपोषित-स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के महिला प्रशिक्षणार्थियों की तुलना में कम वरीयता देते है। इनका सांख्यिकीय रूप से अन्तर सार्थक नहीं है।
- ग्रामीण वित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के पुरुष प्रशिक्षणार्थियों के सामाजिक मूल्य का स्तर शहरी वित्तपोषित-स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के पुरुष प्रशिक्षणार्थियों की तुलना में कम है। ग्रामीण वित्तपोषित-स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के पुरुष प्रशिक्षणार्थी सामाजिक मूल्य को शहरी वित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के पुरुष प्रशिक्षणार्थियों की तुलना में कम वरीयता देते है। इनका सांख्यिकीय रूप से अन्तर सार्थक नही है।
- ग्रामीण स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के महिला प्रशिक्षणार्थियों के सामाजिक मूल्य का स्तर शहरी वित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के महिला प्रशिक्षणार्थियों की तुलना में कम है। ग्रामीण स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के महिला प्रशिक्षणार्थी सामाजिक मूल्य को शहरी स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के महिला प्रशिक्षणार्थियों की तुलना में कम वरीयता देते है। इनका सांख्यिकीय रूप से अन्तर सार्थक नही है।

- ग्रामीण स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के पुरुष प्रशिक्षणार्थियों के सामाजिक मूल्य का स्तर शहरी वित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के पुरुष प्रशिक्षणार्थियों की तुलना में अधिक है। ग्रामीण स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के महिला प्रशिक्षणार्थी सामाजिक मूल्य को शहरी स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के महिला प्रशिक्षणार्थियों की तुलना में अधिक वरीयता देते है। इनका सांख्यिकीय रूप से अन्तर सार्थक नहीं है।
- ग्रामीण स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के महिला प्रशिक्षणार्थियों के सामाजिक मूल्य का स्तर शहरी स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के महिला प्रशिक्षणार्थियों की तुलना में अधिक है। ग्रामीण स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के महिला प्रशिक्षणार्थी सामाजिक मूल्य को शहरी स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के महिला प्रशिक्षणार्थियों की तुलना में अधिक वरीयता देते है। इनका सांख्यिकीय रूप से अन्तर सार्थक नहीं है।
- हमारी उपकल्पना ''ग्रामीण व शहरी वित्तपोषित व स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के प्रशिक्षणार्थियों के सामाजिक मूल्यो के कोई सार्थक अन्तर नहीं है'' प्रामाणिक सिद्ध होती है।
- ग्रामीण व शहरी वित्तपोषित व स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के प्रशिक्षणार्थियों के सृजनात्मक मूल्यं सम्बन्धी निष्कर्ष
- ग्रामीण वित्तपोषित व स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के प्रशिक्षणार्थियों के सृजनात्मक मूल्य का स्तर शहरी वित्तपोषित–स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के प्रशिक्षणार्थियों की तुलना में निम्न है। ग्रामीण वित्तपोषित–स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के प्रशिक्षणार्थी सृजनात्मक मूल्य को शहरी वित्तपोषित–स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के प्रशिक्षणार्थियों की तुलना में कम वरीयता देते है। इनका सांख्यिकीय रूप से अन्तर सार्थक नहीं है।
- ग्रामीण वित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के प्रशिक्षणार्थियों के सृजनात्मक मूल्य का स्तर शहरी वित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के प्रशिक्षणार्थियों की तुलना में कम है। ग्रामीण वित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के प्रशिक्षणार्थी सृजनात्मक मूल्य को शहरी वित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के प्रशिक्षणार्थियों की तुलना में कम वरीयता देते है। इनका सांख्यिकीय रूप से अन्तर सार्थक नहीं है।
- ग्रामीण स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के प्रशिक्षणार्थियों के सृजनात्मक मूल्य का

स्तर शहरी स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के प्रशिक्षणार्थियों की तुलना में अधिक है। ग्रामीण स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के प्रशिक्षणार्थी सृजनात्मक मूल्य को शहरी स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के प्रशिक्षणार्थियों की तुलना में अधिक वरीयता देते है। इनका सांख्यिकीय रूप से अन्तर सार्थक नहीं है।

- ग्रामीण व शहरी वित्तपोषित-स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के पुरुष प्रशिक्षणार्थियों के सृजनात्मक मूल्य का स्तर ग्रामीण-शहरी वित्तपोषित-स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के महिला प्रशिक्षणार्थियों की तुलना में कम है। ग्रामीण-शहरी वित्तपोषित-स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के प्रशिक्षणार्थी सृजनात्मक मूल्य को ग्रामीण-शहरी वित्तपोषित-स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के महिला प्रशिक्षणार्थियों की तुलना में कम वरीयता देते है। इनका सांख्यिकीय रूप से अन्तर सार्थक नहीं है।
- ग्रामीण वित्तपोषित व स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के पुरुष प्रशिक्षणार्थियों के सृजनात्मक मूल्य का स्तर शहरी वित्तपोषित-स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के पुरूष प्रशिक्षणार्थियों की तुलना में कम है। ग्रामीण वित्तपोषित-स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के पुरूष प्रशिक्षणार्थी सृजनात्मक मूल्य को शहरी वित्तपोषित-स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के पुरूष प्रशिक्षणार्थियों की तुलना में कम वरीयता देते है। इनका सांख्यिकीय रूप से अन्तर सार्थक नहीं है।
- ग्रामीण वित्तपोषित व स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के महिला प्रशिक्षणार्थियों के सृजनात्मक मूल्य का स्तर शहरी वित्तपोषित-स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के महिला प्रशिक्षणार्थियों की तुलना में अधिक है। ग्रामीण वित्तपोषित-स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के महिला प्रशिक्षणार्थी सृजनात्मक मूल्य को शहरी वित्तपोषित-स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के प्रशिक्षणार्थियों की तुलना में अधिक वरीयता देते है। इनका सांख्यिकीय रूप से अन्तर सार्थक नहीं है।
- ग्रामीण वित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के पुरुष प्रशिक्षणार्थियों के सृजनात्मक मूल्य का स्तर शहरी वित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के पुरुष प्रशिक्षणार्थियों की तुलना में कम है। ग्रामीण वित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के पुरुष प्रशिक्षणार्थी सृजनात्मक मूल्य को शहरी वित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के पुरुष प्रशिक्षणार्थियों की तुलना में कम वरीयता देते है। इनका सांख्यिकीय रूप से अन्तर सार्थक नहीं है।

- ग्रामीण वित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के महिला प्रशिक्षणार्थियों के सृजनात्मक मूल्य का स्तर शहरी वित्तपोषित-स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के महिला प्रशिक्षणार्थियों की तुलना में कम है। ग्रामीण वित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के महिला प्रशिक्षणार्थी सृजनात्मक मूल्य को शहरी वित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के महिला प्रशिक्षणार्थियों की तुलना में कम वरीयता देते है। इनका सांख्यिकीय रूप से अन्तर सार्थक नहीं है।
- हमारी उपकल्पना ''ग्रामीण व शहरी वित्तपोषित व स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के प्रशिक्षणार्थियों के सृजनात्मक मूल्यों के कोई सार्थक अन्तर नहीं है'' प्रामाणिक सिद्ध होती है।
- ग्रामीण व शहरी वित्तपोषित व स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के प्रशिक्षणार्थियों के आर्थिक मूल्यं सम्बन्धी निष्कर्ष
- ग्रामीण वित्तपोषित व स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के प्रशिक्षणार्थियों के आर्थिक मूल्य का स्तर शहरी वित्तपोषित-स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के प्रशिक्षणार्थियों की तुलना में उच्च है। ग्रामीण वित्तपोषित-स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के प्रशिक्षणार्थी आर्थिक मूल्य को शहरी वित्तपोषित-स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के प्रशिक्षणार्थियों की तुलना में अधिक वरीयता देते है। इनका सांख्यिकीय रूप से अन्तर सार्थक नहीं है।
- ग्रामीण वित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के प्रशिक्षणार्थियों के आर्थिक मूल्य का स्तर शहरी वित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के प्रशिक्षणार्थियों की तुलना में अधिक है। ग्रामीण वित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के प्रशिक्षणार्थी आर्थिक मूल्य को शहरी वित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के प्रशिक्षणार्थियों की तुलना में अधिक वरीयता देते है। इनका सांख्यिकीय रूप से अन्तर सार्थक नहीं है।
- ग्रामीण स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के प्रशिक्षणार्थियों के आर्थिक मूल्य का स्तर शहरी स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के प्रशिक्षणार्थियों की तुलना में कम है। ग्रामीण स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के प्रशिक्षणार्थी आर्थिक मूल्य को शहरी स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के प्रशिक्षणार्थियों की तुलना में कम वरीयता देते है। इनका सांख्यिकीय रूप से अन्तर सार्थक नहीं है।
- ग्रामीण व शहरी वित्तपोषित-स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के पुरुष प्रशिक्षणार्थियों

के अर्थिक मूल्य का स्तर ग्रामीण-शहरी वित्तपोषित-स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के महिला प्रशिक्षणार्थियों की तुलना में अधिक है। ग्रामीण-शहरी वित्तपोषित-स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के प्रशिक्षणार्थी आर्थिक मूल्य को ग्रामीण-शहरी वित्तपोषित-स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के महिला प्रशिक्षणार्थियों की तुलना में अधिक वरीयता देते है। इनका सांख्यिकीय रूप से अन्तर सार्थक नहीं है।

- ग्रामीण वित्तपोषित व स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के पुरुष प्रशिक्षणार्थियों के आर्थिक मूल्य का स्तर शहरी वित्तपोषित-स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के प्रशिक्षणार्थियों की तुलना में अधिक है। ग्रामीण वित्तपोषित-स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के पुरुष प्रशिक्षणार्थी आर्थिक मूल्य को शहरी वित्तपोषित-स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के पुरुष प्रशिक्षणार्थियों की तुलना में अधिक वरीयता देते है। इनका सांख्यिकीय रूप से अन्तर सार्थक नहीं है।
- ग्रामीण वित्तपोषित व स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के महिला प्रशिक्षणार्थियों के आर्थिक मूल्य का स्तर शहरी वित्तपोषित-स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के महिला प्रशिक्षणार्थियों की तुलना में अधिक है। ग्रामीण वित्तपोषित-स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के महिला प्रशिक्षणार्थी आर्थिक मूल्य को शहरी वित्तपोषित-स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के महिला प्रशिक्षणार्थियों की तुलना में अधिक वरीयता देते है। इनका सांख्यिकीय रूप से अन्तर सार्थक नहीं है।
- ग्रामीण स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के पुरुष प्रशिक्षणार्थियों के आर्थिक मूल्य का स्तर शहरी स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के पुरुष प्रशिक्षणार्थियों की तुलना में अधािक है। ग्रामीण स्ववितपोषित बी.एड. कॉलेजों के पुरुष प्रशिक्षणार्थी आर्थिक मूल्य को शहरी स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के पुरूष प्रशिक्षणार्थियों की तुलना में अधिक वरीयता देते है। इनका सांख्यिकीय रूप से अन्तर सार्थक नहीं है।
- ग्रामीण स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के महिला प्रशिक्षणार्थियों के आर्थिक मूल्य का स्तर शहरी स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के महिला प्रशिक्षणार्थियों की तुलना में अधिक है। ग्रामीण स्ववितपोषित बी.एड. कॉलेजों के महिला प्रशिक्षणार्थी आर्थिक मूल्य को शहरी स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के महिला प्रशिक्षणार्थियों की तुलना में अधिक वरीयता देते है। इनका सांख्यिकीय रूप से अन्तर सार्थक नहीं है।

- हमारी उपकल्पना ''ग्रामीण व शहरी वित्तपोषित व स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के प्रशिक्षणार्थियों के आर्थिक मूल्यों के कोई सार्थक अन्तर नही है'' प्रामाणिक सिद्ध होती है।

- ग्रामीण व शहरी वित्तपोषित व स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के प्रशिक्षणार्थियों के मानवीय मूल्यं सम्बन्धी निष्कर्ष

- ग्रामीण वित्तपोषित व स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के प्रशिक्षणार्थियों के मानवीय मूल्य का स्तर शहरी वित्तपोषित-स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के प्रशिक्षणार्थियों की तुलना में कम है। ग्रामीण वित्तपोषित-स्ववितपोषित बी.एड. कॉलेजों के प्रशिक्षणार्थी मानवीय मूल्य को शहरी वित्तपोषित-स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के प्रशिक्षणार्थियों की तुलना में कम वरीयता देते है। इनका सांख्यिकीय रूप से अन्तर सार्थक नहीं है।

- ग्रामीण वित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के प्रशिक्षणार्थियों के मानवीय मूल्य का स्तर शहरी वित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के प्रशिक्षणार्थियों की तुलना में कम है। ग्रामीण वित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के प्रशिक्षणार्थी मानवीय मूल्य को शहरी वित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के प्रशिक्षणार्थियों की तुलना में कम वरीयता देते है। इनका सांख्यिकीय रूप से अन्तर सार्थक नहीं है।

- ग्रामीण स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के प्रशिक्षणार्थियों के मानवीय मूल्य का स्तर शहरी स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के प्रशिक्षणार्थियों की तुलना में कम है। ग्रामीण स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के प्रशिक्षणार्थी मानवीय मूल्य को शहरी स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के प्रशिक्षणार्थियों की तुलना में कम वरीयता देते है। इनका सांख्यिकीय रूप से अन्तर सार्थक नही है।

  ग्रामीण व शहरी वित्तपोषित-स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के पुरुष प्रशिक्षणार्थियों के मानवीय मूल्य का स्तर ग्रामीण-शहरी वित्तपोषित-स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के महिला प्रशिक्षणार्थियों की तुलना में अधिक है। ग्रामीण-शहरी वित्तपोषित-स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के पुरुष प्रशिक्षणार्थी मानवीय मूल्य को ग्रामीण-शहरी वित्तपोषित-स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के महिला प्रशिक्षणार्थियों की तुलना में अधिक वरीयता देते है। इनका सांख्यिकीय रूप से अन्तर सार्थक नहीं है।

- ग्रामीण वित्तपोषित व स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के पुरुष प्रशिक्षणार्थियों के

मानवीय मूल्य का स्तर शहरी वित्तपोषित-स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के पुरूष प्रशिक्षणार्थियों की तुलना में अधिक है। ग्रामीण वित्तपोषित-स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के पुरुष प्रशिक्षणार्थी मानवीय मूल्य को शहरी वित्तपोषित-स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के पुरुष प्रशिक्षणार्थियों की तुलना में अधिक वरीयता देते है। इनका सांख्यिकीय रूप से अन्तर सार्थक नहीं है।

- ग्रामीण वित्तपोषित व स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के महिला प्रशिक्षणार्थियों के मानवीय मूल्य का स्तर शहरी वित्तपोषित-स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के महिला प्रशिक्षणार्थियों की तुलना में कम है। ग्रामीण वित्तपोषित-स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के महिला प्रशिक्षणार्थी मानवीय मूल्य को शहरी वित्तपोषित-स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के महिला प्रशिक्षणार्थियों की तुलना में कम वरीयता देते है। इनका सांख्यिकीय रूप से अन्तर सार्थक नहीं है।
- ग्रामीण वित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के पुरुष प्रशिक्षणार्थियों के मानवीय मूल्य का स्तर शहरी वित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के पुरुष प्रशिक्षणार्थियों की तुलना में अधिक है। ग्रामीण वित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के पुरुष प्रशिक्षणार्थी मानवीय मूल्य को शहरी वित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के पुरुष प्रशिक्षणार्थियों की तुलना में अधिक वरीयता देते है। इनका सांख्यिकीय रूप से अन्तर सार्थक नहीं है।
- ग्रामीण वित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के महिला प्रशिक्षणार्थियों के मानवीय मूल्य का स्तर शहरी वित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के महिला प्रशिक्षणार्थियों की तुलना में कम है। ग्रामीण वित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के महिला प्रशिक्षणार्थी मानवीय मूल्य को शहरी वित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के महिला प्रशिक्षणार्थियों की तुलना में कम वरीयता देते है। इनका सांख्यिकीय रूप से अन्तर सार्थक नहीं है।
- ग्रामीण स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के पुरुष प्रशिक्षणार्थियों के मानवीय मूल्य का स्तर शहरी स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के पुरुष प्रशिक्षणार्थियों की तुलना में कम है। ग्रामीण स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के पुरुष प्रशिक्षणार्थी मानवीय मूल्य को शहरी स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के पुरुष प्रशिक्षणार्थियों की तुलना में कम वरीयता देते है। इनका सांख्यिकीय रूप से अन्तर सार्थक नहीं है।
- ग्रामीण स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के महिला प्रशिक्षणार्थियों के मानवीय मूल्य

का स्तर शहरी स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के महिला प्रशिक्षणार्थियों की तुलना में कम है। ग्रामीण स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के महिला प्रशिक्षणार्थी मानवीय मूल्य को शहरी स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के महिला प्रशिक्षणार्थियों की तुलना में कम वरीयता देते है। इनका सांख्यिकीय रूप से अन्तर सार्थक नहीं है।

- हमारी उपकल्पना ''ग्रामीण व शहरी वित्तपोषित व स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के प्रशिक्षणार्थियों के मानवीय मूल्यों के कोई सार्थक अन्तर नहीं है'' प्रामाणिक सिद्ध होती है।

- ग्रामीण व शहरी वित्तपोषित व स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के प्रशिक्षणार्थियों के राजनैतिक मूल्यं सम्बन्धी निष्कर्ष

  ग्रामीण वित्तपोषित व स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के प्रशिक्षणार्थियों के राजनैतिक मूल्य का स्तर शहरी वित्तपोषित–स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के प्रशिक्षणार्थियों की तुलना में कम है। ग्रामीण वित्तपोषित–स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के प्रशिक्षणार्थी राजनैतिक मूल्य को शहरी वित्तपोषित–स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के प्रशिक्षणार्थियों की तुलना में कम वरीयता देते है। इनका सांख्यिकीय रूप से अन्तर सार्थक नहीं है।

- ग्रामीण वित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के प्रशिक्षणार्थियों के राजनैतिक मूल्य का स्तर शहरी वित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के प्रशिक्षणार्थियों की तुलना में अधिक है। ग्रामीण वित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के प्रशिक्षणार्थी राजनैतिक मूल्य को शहरी वित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के प्रशिक्षणार्थियों की तुलना में अधिक वरीयता देते हैं। इनका सांख्यिकीय रूप से अन्तर सार्थक नहीं है।

- ग्रामीण स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के प्रशिक्षणार्थियों के राजनैतिक मूल्य का स्तर शहरी स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के प्रशिक्षणार्थियों की तुलना में कम है। ग्रामीण स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के प्रशिक्षणार्थी राजनैतिक मूल्य को शहरी स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के प्रशिक्षणार्थियों की तुलना में कम वरीयता देते हैं। इनका सांख्यिकीय रूप से अन्तर सार्थक नहीं है।

- ग्रामीण व शहरी वित्तपोषित–स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के पुरुष प्रशिक्षणार्थियों के राजनैतिक मूल्य का स्तर ग्रामीण–शहरी वित्तपोषित–स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के महिला प्रशिक्षणार्थियों की तुलना में कम है। ग्रामीण–शहरी वित्तपोषित–स्ववित्तपोषित

बी.एड. कॉलेजों के पुरुष प्रशिक्षणार्थी राजनैतिक मूल्य को ग्रामीण-शहरी वित्तपोषित-स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के महिला प्रशिक्षणार्थियों की तुलना में कम वरीयता देते है। इनका सांख्यिकीय रूप से अन्तर सार्थक नहीं है।

- ग्रामीण वित्तपोषित व स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के पुरुष प्रशिक्षणार्थियों के राजनैतिक मूल्य का स्तर शहरी वित्तपोषित-स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के पुरुष प्रशिक्षणार्थियों की तुलना में कम है। ग्रामीण वित्तपोषित-स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के पुरुष प्रशिक्षणार्थी राजनैतिक मूल्य को शहरी वित्तपोषित-स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के पुरुष प्रशिक्षणार्थियों की तुलना में कम वरीयता देते है। इनका सांख्यिकीय रूप से अन्तर सार्थक नहीं है।
- ग्रामीण वित्तपोषित व स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के महिला प्रशिक्षणार्थियों के राजनैतिक मूल्य का स्तर शहरी वित्तपोषित-स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के महिला प्रशिक्षणार्थियों की तुलना में कम है। ग्रामीण वित्तपोषित-स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के महिला प्रशिक्षणर्थी राजनैतिक मूल्य को शहरी वित्तपोषित-स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के महिला प्रशिक्षणार्थियों की तुलना में कम वरीयता देते हैं। इनका सांख्यिकीय रूप से अन्तर सार्थक नहीं है।
- ग्रामीण वित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के पुरुष प्रशिक्षणार्थियों के राजनैतिक मूल्य का स्तर शहरी वित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के पुरुष प्रशिक्षणार्थियों की तुलना में कम है। ग्रामीण वित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के पुरुष प्रशिक्षणार्थी राजनैतिक मूल्य को शहरी वित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के पुरूष प्रशिक्षणार्थियों की तुलना में कम वरीयता देते है। इनका सांख्यिकीय रूप से अन्तर सार्थक नहीं है।
- ग्रामीण वित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के महिला प्रशिक्षणार्थियों के राजनैतिक मूल्य का स्तर शहरी वित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के महिला प्रशिक्षणार्थियों की तुलना में अधिक है। ग्रामीण वित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के महिला प्रशिक्षणार्थी राजनैतिक मूल्य को शहरी वित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के महिला प्रशिक्षणार्थियों की तुलना में अधिक वरीयता देते है। इनका सांख्यिकीय रूप से अन्तर सार्थक नहीं है।
- ग्रामीण स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के पुरुष प्रशिक्षणार्थियों के राजनैतिक मूल्य का स्तर शहरी स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के पुरुष प्रशिक्षणार्थियों की तुलना में

कम है। ग्रामीण स्ववितपोषित बी.एड. कॉलेजों के पुरुष प्रशिक्षणार्थी राजनैतिक मूल्य को शहरी स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के पुरुष प्रशिक्षणार्थियों की तुलना में कम वरीयता देते है। इनका सांख्यिकीय रूप से अन्तर सार्थक नहीं है।

- ग्रामीण स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के महिला प्रशिक्षणार्थियों के राजनैतिक मूल्य का स्तर शहरी स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के महिला प्रशिक्षणार्थियों की तुलना में कम है। ग्रामीण स्ववितपोषित बी.एड. कॉलेजों के महिला प्रशिक्षणार्थी राजनैतिक मूल्य को शहरी स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के महिला प्रशिक्षणार्थियों की तुलना में कम वरीयता देते हैं। इनका सांख्यिकीय रूप से अन्तर सार्थक नहीं है।
- हमारी उपकल्पना ''ग्रामीण व शहरी वित्तपोषित व स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के प्रशिक्षणार्थियों के ज्ञानात्मक मूल्यों के कोई सार्थक अन्तर नहीं हैं'' प्रामाणिक सिद्ध होती है।

प्रस्तुत शोध की शैक्षिक उपादेयता

वर्तमान जटिल प्रौद्योगिकीय युग में शिक्षकों के समक्ष सबसे बड़ी समस्या यह है कि किन मूल्यों की शिक्षा दी जाये और किस प्रकार दी जाये, जिससे विद्यार्थियों को एक संवेदनशील मानव तथा राजनैतिक ओर समाजिक चेतना से अनुप्राणित नागरिक के रूपमें संवारा जा सकें, जो आज की वैश्विक परिसिथतियों में श्रेष्ठ सामाजिक परिवर्तन का वाहक बन सके। राष्ट्र सम्मान की ध्वज पताका संभाल सकें, विश्व शांति में योगदान दे सकें तथा पर्यावरण संरक्षण को अपनी व्यक्तिगत, नैतिक एवं धार्मिक जिम्मेदारी मानते हुए संपूर्ण ब्रह्माण्ड में मानव मात्र के कल्याण को ध्येय बनते हुए वसुधैव कुटम्बकम् की भावना को प्रत्येक मानव के हृदय में दीप की तरह प्रज्जवलित कर सकें। शिक्षक छात्रों में मूल्यों को विकसित करने में तभी सफल हो सकते हैं, जब शिक्षक सवयं मूल्य–आधारित आचरण को अपनायें तथा अपनी कथनी और करनी में भेद न आने दें। बी.एड. के प्रशिक्षणार्थी जिन्हें आगे चलकर शिक्षा का भार संभालना है क्या वे उन मूल्यों से युक्त हैं जिन पर शिक्षा आधारित है? वे कितने सृजनात्मक हैं जो सृजनाशीलता को अपनातें हुये छात्रों को आदर्श शिक्षा दे सकेंगे? साथ ही इनमें सौन्दर्यात्मक सामाजिक, सृजनात्मक, आर्थिक, मानवीय, राजनैतिक, धार्मिक तथा ज्ञानात्मक मूल्यों का तुलनात्मक स्तर क्या है? यही इस शोध अध्ययन की विषयवस्तु है। प्रस्तुत अध्ययन से सम्बन्धित परिणाम एवं उनके आधार पर निष्कर्षों को दृष्टिगत

रखते हुए अनेक शैक्षिक उपादेयताओं की संभावनाओं पर विचार किया जा सकता है– भारतीय समाज में लिंग सभी लोगों को एक समान अधिकार मिला हुआा है। फिर भी परम्परागत व्यवस्था के परिणाम स्वरूप भिन्नता का होना निहित है। समाज में व्यक्ति का व्यवहार मूल्यों द्वारा विकसित होता है। समाज मेें सर्वसम्मत मानदण्ड या आदर्श व्यक्ति के आचरण व व्यवहार को प्रभावित करते हैं। शिक्षक समाज का अभिकर्ता होता है। तथा इसका आचरण व व्यवहार समाज या बालकों द्वारा अधि ाग्रहीणीय है। अतः समाज में जिन बुनियादी गुणों की आवश्यकता होती है उन्हें शिक्षक द्वारा अपने व्यहार में उद्‌दभासित किया जा सकता है। शिक्षक बालक को सर्वसम्मति मूल्यों द्वारा अभिप्रेरित करके उनके वांछित व्यवहार की दिशा में सहायता कर सकता है।

वर्तमान समय में जब देश लिंग, क्षेत्र, जाति, सम्प्रदाय एवं वर्ग की समस्याओं से ग्रस्त है। चूँकि अध्ययन ग्रामीण एवं शहरी वित्त पोशित व स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेज के प्रशिक्षणार्थियों से संबंधित है इसलिए प्रस्तुत अध्ययन के परिणाम राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद् के लिए सहायक सिद्ध हो सकते हैं क्योंकि बी.एड. कॉलेजों के प्रशिक्षणार्थियों में लिंग एवं वर्ग के आधार पर उनके विविध मूल्यों में अन्तर पाया गया है। अतः बी.एड. प्रशिक्षणार्थियों जो भावी शिक्षक है के जीवन मूल्य में आयी विषमता को दूर करने के लिए शिक्षण-प्रशिक्षण संस्थाओं में मूल्यों से सम्बन्धित तथ्यों को पाठ्यक्रम में सम्मिलित किये जाने की आवश्यकता है। इसके साथ ही यह शिक्षण-प्रशिक्षण कार्यक्रम को परिमार्जित करने मे यथा संभव सहयोग दे सकता है जिससे हमारे भावी शिक्षण अधिक मूल्यवान हो अपने कर्तव्यों का भलीभॉति निर्वहन कर सकते हैं। इसके लिए राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद को ब्लाक जिला तथा मण्डल स्तर पर जीवन मूल्य से सम्बन्धित सेमिनार एवं संगोष्ठियों का आयोजन किया जा सकता है।

आगामी शोध हेतु सुझाव

- वर्तमान अध्ययन ग्रामीण व शहरी वित्तपोषित व स्ववित्तपोषित बी.एड. कॉलेजों के प्रशिक्षणार्थियों द्वारा व्यक्त मूल्यों के प्रति वरीयता का तुलनात्मक अध्ययन है। इसे प्रशिक्षणार्थियों एवं कॉलेजों में कार्यरत अध्यापकों पर तुलनात्मक दृष्टि से किया जा सकता है।

- वर्तमान अध्ययन का न्यादर्श सीमित है, जिसका प्रभाव अध्ययन निष्कर्षों पर स्वाभाविक है। इस अध्ययन को वृहद न्यादर्श पर करके विश्वसनीय परिणामों को प्राप्त किया जा सकता है।
- वर्तमान अध्ययन गोरखपुर मण्डल के बी.एड. कॉलेजों के प्रशिक्षणार्थियों पर अवलम्बित है। इस प्रकार के अध्ययन अन्य मण्डलों पर भी किये जाने की आवश्यकता है।
- अध्ययन को प्रादेशिक स्तर पर सम्पन्न किया जाना आवश्यक है।
- वर्तमान अध्ययन को सम्पूर्ण भारत के बी.एड. प्रशिक्षणार्थियों पर भी तुलनात्मक दृष्टि से करने की आवश्यकता है।

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 20, अंक 1, अप्रैल 2013

शोध टिप्पणी/संवाद

सर्व शिक्षा अभियान के मौलिक सिद्धान्त एवं राष्ट्र के निर्माण में उसका योगदान

नीलिमा सिंह*

सर्व शिक्षा अभियान की योजना प्रारंभिक शिक्षा के सर्वसुलभीकरण के निमित्त मिशन पद्धति अपनाये जाने के संबंध में अक्टूबर 1998 में आयोजित राज्य शिक्षा मंत्रियों के सम्मेलन की सिफारिशों का परिणाम है। एसएसए अभियान की योजना को मंत्रिमण्डल द्वारा 16 नवम्बर 2000 को हुई उसकी बैठक में अनुमोदित कर दिया गया। सर्व शिक्षा अभियान की योजना का प्रारंभ भारत सरकार ने 2001 में किया। यह प्रणाली सामुदायिक स्वामित्व वाली एक प्रणाली है और पंचायती राज संस्थानों के परामर्श से तैयार की गयी ग्राम शिक्षा योजनाएँ, जिला प्रारंभिक शिक्षा योजनाओं का आधार बनेंगी। एसएसए के लड़कियों, अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों सहित विषम परिस्थितियों में रह रहे बच्चों की शैक्षिक आवश्यकताओं पर विशेष बल दिया गया है।

प्राथमिक शिक्षा समग्र शिक्षा व्यवस्था का आधार है। विभिन्न स्तरों की शैक्षिक गुणवत्ता संवर्द्धन हेतु सर्वप्रथम प्राथमिक शिक्षा का गुणात्मक समुन्नयन किया जाना नितांत आवश्यक है। इस बात को ध्यान में रखते हुए भारतीय संविधान में यह संकल्पना की गयी कि एक निश्चित अवधि में प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमीकरण का लक्ष्य प्राप्त कर लिया जायेगा। इसी लक्ष्य प्राप्ति की दिशा में शासन स्तर पर अनेक प्रयास किये जा रहे हैं। समय-समय पर विभिन्न योजनाओं एवं परियोजनाओं को संचालित करके शिक्षा के क्षेत्र में गुणात्मक उन्नयन हेतु प्रयास किया जा रहा है।

सर्व शिक्षा अभियान के अन्तर्गत वर्ष 2010 तक प्रारम्भिक शिक्षा के सार्वभौमीकरण का लक्ष्य निर्धारित किया गया है। भारत के संविधान के 86वें संविधान संशोधन के फलस्वरूप 14 वर्ष तक के सभी बच्चों को अनिवार्य एवं नि:शुल्क शिक्षा को बच्चों के

---

* असिस्टेन्ट प्रोफेसर, उदय प्रताप कालेज, वाराणसी

मौलिक अधिकार के रूप में प्राप्त हो गया है। सर्व शिक्षा अभियान (एसएसए) प्रारम्भिक शिक्षा को सर्वव्यापी बनाने के लिए भारत के सामाजिक क्षेत्र का एक महत्वपूर्ण कार्यक्रम है। इसके समग्र लक्ष्यों में सर्वव्यापी पहुँच और अवधारणा, प्रारम्भिक शिक्षा के लिंग और सामाजिक श्रेणी के अन्तरों को पाटना और बच्चों के शिक्षण स्तर में महत्वपूर्ण वृद्धि शामिल है। सर्व शिक्षा अभियान में सभी राज्य और केन्द्र शासित राज्य शामिल हैं तथा इनकी पहुँच देश के 12.3 लाख बस्तियों में लगभग 19.4 करोड़ बच्चों तक है।

सर्वव्यापी प्रारम्भिक शिक्षा के प्रमुख कार्रवाई सुनिश्चित करने के लिए संगठन तंत्र और अनुवीक्षण तंत्र देश के उच्चतम राजनैतिक स्तर से अपने अधिकार प्राप्त करते हैं। भारत के प्रधानमंत्री सर्व शिक्षा अभियान के राष्ट्रीय मिशन का नेतृत्व करते हैं जो सर्वव्यापी शिक्षा अभियान के अन्तर्गत हुई प्रगति का अनुवीक्षण करता है। राष्ट्रीय मिशन की कार्यकारिणी की अध्यक्षता मानव संसाधन विकास मंत्री करते हैं। राष्ट्रीय मिशन में मुख्य राजनैतिक दलों, गैर सरकारी क्षेत्र, शिक्षाविद्, अध्यापक संघों, वैज्ञानिक और प्रतिष्ठित विशेषज्ञों का प्रतिनिधित्व है। इसके प्रमुख उद्देश्य है:

- बच्चों को सुविज्ञ समाज के सक्रिय भागीदारी के योग्य बनाना।
- सभी स्तरों पर निष्पादन और परिणाम के प्रति जवाबदेही।
- सभी अध्यापकों, अभिभावकों, समुदाय, पंचायती–राज संस्थाओं और स्वैच्छिक संगठनों का सहयोग।
- विशेष जरूरतों वाले बच्चों सहित शिक्षा की दृष्टि से पिछड़े क्षेत्रों, असुविध ाग्रस्त समूहों पर ध्यान केन्द्रित करना।
- प्रारम्भिक शिक्षा प्रणाली की कार्य कुशलता में सुधार हेतु हो रहे निवेशों और प्रयासों को सुनिश्चित करने का प्रयास करना।
- यू.ई.ई. के सतत् प्रयास सुनिश्चित करने हेतु संस्थागत सुधार और क्षमता सृजन।

लड़कियों की शिक्षा को प्राथमिकता

सर्व शिक्षा अभियान शिक्षा अवसरों को एक समान करने और लिंग भेद को समाप्त करने हेतु लड़कियों की शिक्षा को प्रोत्साहित करते हैं। सर्व शिक्षा अभियान ने इस कार्यक्रम के अन्तर्गत सभी प्रयास किये हैं। लड़कियों की शिक्षा को प्रोत्साहित करने हेतु कार्यनीति बनायी गई है। कम महिला साक्षरता वाले क्षेत्रों पर ध्यान देने और लिंग भेद को घटाने के लक्ष्य से शिक्षा योजना में कुछ कार्यनीतिक परिवर्तन किये गये हैं। लड़कियां विशेषकर

लाभवंचित वर्गों की लड़कियों को स्कूल भेजने की केन्द्रित कार्यनीति है और इसके लिए विशेष प्रयास किये जा रहे हैं। सर्व शिक्षा अभियान के तहत सम्मिलित दो विशेष कार्यक्रम अर्थात् प्रारम्भिक स्तर पर लड़कियों की शिक्षा के लिए राष्ट्रीय कार्यक्रम (एनपीईजीइल) NPEGEL (National Programme for Education of Girls Elementary Level) तथा कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालय (के.जी.बी.वी.) KGBV – (Kasturba Gandhi Balika Vidyalaya) के माध्यम से लड़कियों की शिक्षा को प्राथमिकता दी गई है।

एनपीईजीईल शैक्षिक रूप से पिछड़े ब्लाकों (ईबीबी) EBB – (Educationally Backward Blocks) में कार्यान्वित किया जाता है तथा यह उन लड़कियों की जरूरतों को पूरा करता है जो स्कूल के 'अन्दर' और 'बाहर' हैं। एनपीईजीईएल लड़कियों के नामांकन, उपस्थिति तथा उपलब्धि पर अनुवर्ती कारवाई करने हेतु ग्रामीण स्तर के महिला और सामुदायिक समूहों के माध्यम से कार्य करता है। समुदाय को स्थानीय मुद्दों की उनकी समझ के आधार पर ग्राम विशिष्ट कार्य पर लगाया जाता है। ईबीबी में दूसरी प्रमुख पहल 'कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालय (के.जी.बी.वी.) योजना है जिसमें अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों, अन्य पिछड़े वर्गों तथा मुस्लिम समुदायों की लड़कियों के लिए आवासीय उच्च प्राथमिक विद्यालयों की स्थापना करने का प्रावधान है। इस योजना का लक्ष्य छिटफुट बस्तियों का क्षेत्र है, जहां स्कूल काफी दूर हैं तथा लड़कियों को अपनी शिक्षा को छोड़ देने के लिए बाध्य करता है। केजीबीवी ब्लाक में ही आवासीय विद्यालयों की स्थापना करके इसका समाधान करता है। इसके उद्देश्य हैं:

- किशोरावस्था की बालिकाएं जो नियमित स्कूल में नहीं जा सकतीं।
- 10 + आयु वाली स्कूल न जाने वाली बालिकाएं जो प्राथमिक स्कूल पूरा नहीं कर पायीं।
- छिटपुट आबादी वाले दुर्गम क्षेत्रों की प्रवासी युवा लड़कियां जो प्राथमिक और उच्च प्राथमिक स्कूल पूरा नहीं कर सकीं।

के.जी.बी.वी. योजना में अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, पिछड़ा वर्ग तथा अल्पसंख्यक समुदायों की लड़कियों के न्यूनतम 75 प्रतिशत सीट तथा गरीबी रेखा से नीचे रह रहे परिवारों के लिए 25 प्रतिशत सीट के आरक्षण का प्रावधान है।

एनपीईजीईएल तथा केजीबीबी दोनों योजनाओं के सभी लड़कियों का समावेश सुनिश्चित करने तथा उन्हें 'गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान करने के लिए सर्व शिक्षा अभियान

के तहत प्रयासों को सम्पूरित करने के लिए तालमेल के साथ कार्य करने की संभावना है। एनपीईजीईएल दिवा स्कूलों के माध्यम से कार्य करने के लिए तैयार किया गया है जबकि केजीबीवी सुदूर क्षेत्रों में जहां उच्च प्राथमिक स्कूल की सुविधा नहीं है, अपना कतिपय सामाजिक समूहों के शैक्षिक रूप से अलाभान्वित क्षेत्रों में लड़कियों के लिए आवासीय स्कूल की सुविधा स्थापित करता है।

पहुँच और समानता सुनिश्चित करना

सर्व शिक्षा अभियान में सामाजिक असुविधाग्रस्त समूहों की शिक्षा के महत्व को अन्तरगुंथित किया गया है। अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और लड़कियों को शैक्षिक प्रोत्साहन के रूप में शिक्षा को ऑफसेट लागत मुहैया कराई गई है। सर्व शिक्षा अभियान ऐसे समूहों के शैक्षिक अवसर बढ़ाने हेतु विशेष कार्यक्रम बनाता है। सर्व शिक्षा अभियान के विशेष कार्यक्रम के लिए लक्षित ऐसे जिलों की पहचान की गई है जहां अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और अल्पसंख्यक (मुस्लिम) समुदाय की पर्याप्त आबादी है तथा 50,000 से अधिक स्कूल न जाने वाले बच्चों और लिंग भेद वाले जिलों की सर्व शिक्षा अभियान के तहत लक्षित हस्तक्षेपों के लिए विशेष फोकस जिलों के रूप में पहचान की गई है।

शिक्षा सामाजिक सशक्तिकरण का सर्वाधिक प्रभावी तंत्र है। सर्व शिक्षा अभियान, लाभ से वंचित समूहों (अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, अन्य पिछड़ा वर्ग एवं अल्पसंख्यक समुदाय) के बच्चों पर विशेष ध्यान देता है। यह इन लक्षित समूहों को शिक्षा हेतु विशेष हस्तक्षेपों और कार्यनीति के संदर्भों के विकास की व्यवस्था करता है।

सर्व शिक्षा अभियान जो शैक्षिक सुविधाओं से वंचित रह गए हैं, उनके लिए निधि निर्धारित करने एवं शिक्षा के संवर्धन हेतु स्कूल अवसंरचना मुहैया कराने के उद्देश्य से जिलों और खंडों के उन भौगोलिक क्षेत्रों को लक्षित करने के लिए कृत संकल्प है, जहां अनुसूचित जनजाति अन्य पिछड़ा वर्ग एवं अल्पसंख्यक समुदाय का बाहुल्य है। सर्व शिक्षा अभियान के अन्तर्गत लक्षित हस्तक्षेप हेतु ऐसे 441 जिलों की पहचान की गयी है, जिन पर विशेष ध्यान दिया जाना है:

- जिलों में अनु. जाति, अनु. जनजाति जनसंख्या बहुल जिलों में प्राथमिक शिक्षा हेतु पर्याप्त स्कूल अवसंरचना मुहैया कराना।
- विशिष्ट घरों के बच्चों की स्कूल जाने की जरूरतों पर ध्यान केन्द्रित करते हुए अनु. जाति, अनु. जनजाति समुदायों के समुदाय आयोजकों की तैनाती।
- दूरस्थ, छुटपुट आबादी वाले क्षेत्रों तक जो अन्यथा स्कूल के लिए अपात्र है, शिक्षा गारंटी योजना।

- सेवा वंचित बस्तियों तथा अनु. जाति, अनु. जनजाति के बच्चों के लिए, अन्य स्कूल से बाहर के बच्चों के लिए वैकल्पिक स्कूल की सुविधा स्थापित करना।
- अनु. जाति, अनु. जनजाति के विद्यार्थियों के लिए नि:शुल्क पाठ्यपुस्तकें।
- अनु. जाति और अनु. जनजाति के छात्रों की सहायता हेतु प्रत्येक जिले में विशेष नवीन गतिविधियों के लिए 15 लाख रुपये का प्रावधान।
- शिक्षा के समान अवसरों के प्रोत्साहन एवं सामाजिक पक्षपात समाप्त करने के निमित्त शिक्षकों का संवेदी कार्यक्रम।
- विशेष कोचिंग और उपचारी कक्षाएं।
- जनजातीय क्षेत्रों में स्थानीय शिक्षकों की भर्ती करना जो उन बच्चों से घनिष्ठता बढ़ा सकें जिनकी मातृभाषा जनजातीय भाषा हो।
- शिक्षकों की भर्ती के लिए अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के लिए आरक्षण।
- जनजातीय भाषाओं में सामग्री, सेतु सामग्री तैयार करना ताकि घरेलू भाषा में स्कूल भाषा में अंतरण हो सके।
- आदिवासी क्षेत्रों के प्रत्येक स्कूल में आँगनबाड़ी और बालवाड़ी अथवा क्रेच ताकि लड़कियों को बाल देखभाल न करना पड़े।
- उच्चतर माध्यमिक स्तर के कस्तूरबा गाँधी बालिका विद्यालय आवासीय स्कूलों में अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति की लड़कियों को प्राथमिकता देना।

विकलांगों के लिए समावेशी शिक्षा

सर्व शिक्षा अभियान का उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि विशेष आवश्यकता वाले प्रत्येक बच्चे को चाहे वह किसी भी श्रेणी, कोटि का हो और उसकी विकलांगता की मात्रा कुछ भी हो, उपयुक्त वातावरण में शिक्षा प्रदान की जाए। समावेशी शिक्षा के कार्यक्रमों का शीघ्र पता लगाना और पहचान करना, प्रयोजन मूलक और औपचारिक निर्धारण उपर्युक्त शैक्षिक तैनाती, विशिष्ट शैक्षिक योजना बनाना, सहायता और उपयंत्रों की व्यवस्था करना, शिक्षक का प्रशिक्षण, संसाधन संचय, निर्माण बाधाओं को दूर करना, अनुवीक्षण और मूल्यांकन और लड़कियों पर विशेष ध्यान केन्द्रित करना आदि शामिल हैं।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 तथा संशोधित 1992 विकलांग व्यक्तियों की शिक्षा पर विशेष बल देती हैं। नीति कहती है कि उद्देश्य शारीरिक तथा मानसिक विकलांगों को

सामान्य समुदाय के साथ समान भागीदार के रूप में एकीकृत करने, उन्हें सामान्य वृद्धि के साथ तैयार करने और उन्हें साहस तथा विश्वास के साा‍थ जीवन जीने में समर्थ बनाने का होना चाहिए। इसके लिए निम्न कदम उठाये जाने चाहिए:

- जहां-कहीं व्यवहार्य हो, मोटर विकलांग तथा अन्य हल्के विकलांग बच्चों की शिक्षा अन्य बच्चों के समान ही होगी।
- अधिक विकलांग बच्चों हेतु जहां तक सम्भव हो जिला मुख्यालय में ही छात्रावास के साथ विशेष स्कूल मुहैया कराना।
- निःशक्त व्यक्तियों को व्यवसायिक प्रशिक्षण देने के लिए आवश्यक व्यवस्थाएं ।
- विकलांग बच्चों की विशेष आवश्यकताओं से निपटने के लिए शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रमों का पुनः अभिमुखीकरण, विशेष रूप से प्राथमिक कक्षाओं के शिक्षकों हेतु।
- प्रत्येक संभव तरीके से निःशक्त बच्चों की शिक्षा हेतु स्वैच्छिक प्रयासों को प्रोत्साहन। सर्व शिक्षा अभियान (एसएसए) कार्यक्रम यह सुनिश्चित करता है कि 6-14 वर्ष की आयु में विशेष आवश्यकताओं वाले प्रत्येक बच्चे को निःशक्तता के प्रकार, श्रेणी तथा डिग्री पर ध्यान न देते हुए, अर्थपूर्ण तथा गुणवत्ता वाली शिक्षा मुहैया करवाई जाए। एसएसए विशेष आवश्यकताओं वाले सभी बच्चों को समेकित तथा शामिल की जाने वाली शिक्षा मुहैया करवाता है। इसमें स्कूलों, मुक्त विद्यालयों, गैर-औपचारिक तथा वैकल्पिक स्कूलों, दूरस्थ शिक्षा तथा अधिगम, विशेष स्कूलों के माध्यम से शिक्षा शामिल है। जहां कहीं आवश्यक हो घर आधारित शिक्षा, उपचारात्मक शिक्षण, अंशकालिक कक्षाएं, समुदाय आधारित पुनर्वास (सीबीआर) तथा व्यावसायिक शिक्षा को भी मुहैया करवाया जाता है।
- एसएसए प्रतिवर्ष विशिष्ट प्रस्तावों के अनुसार निःशक्त बच्चों के एकीकरण हेतु 1200 रुपए तक की वित्तीय सहायता मुहैया करवाता है।
- एसएसए के अन्तर्गत शामिल की जाने वाली शिक्षा हस्तक्षेपों में पहचान, क्रियात्मक तथा अनौपचारिक आकलन, उचित शैक्षणिक नियोजन, व्यक्तिगत शैक्षणिक योजना को तैयार करना, उपकरणों का प्रावधान, शिक्षक प्रशिक्षण, संसाधन सपोर्ट, वास्तुकला अवरोधों को हटाना, प्रबोधन तथा मूल्यांकन और विशेष आवश्यकता वाली बालिकाओं पर विशेष ध्यान दिया जाना शामिल है।

- विशेष आवश्यकता वाले बच्चों को स्कूलों हेतु तैयार करने के मुख्य उद्देश्य के साथ आवासीय सेतु पाठ्यक्रम भी मुहैया करवाये जाते हैं जिससे बेहतर गुणवत्ता को शामिल किया जा सके।
- अधिक गम्भीर नि:शक्त बच्चों हेतु गृह आधारित शिक्षा मुहैया करायी जाती है।

गुणवत्ता में सुधार

सर्व शिक्षा अभियान के अंतर्गत बच्चों को स्कूल में बनाये रखना और गुणवत्ता में सुधार करना महत्वपूर्ण घटक है। संगत, उपयोगों और गुणवत्ता युक्त शिक्षा सुनिश्चित करने के लिए सर्व शिक्षा अभियान में शिक्षक भर्ती और प्रशिक्षण, पाठ्यक्रम और पाठ्य-पुस्तकों का नवीकरण, शिक्षण अध्ययन सामग्री का विकास व वितरण, स्कूल के वार्षिक अनुदान, छात्र मूल्यांकन प्रणालियां, उपचारी शिक्षा, कम्प्यूटरयुक्त शिक्षा, दूरस्थ शिक्षा, गुणवत्ता से सम्बन्धित गतिविधियां एवं अनुवीक्षण के लिए सहायता का प्रावधान है।

शिक्षक नियुक्ति और प्रशिक्षण

सभी स्कूलों में शिक्षकों की उपस्थिति में सुधार हेतु दिसम्बर, 2008 तक 12.27 लाख संस्वीकृत शिक्षकों में से 9.68 लाख शिक्षकों को नियुक्त किया गया। शिक्षकों के कौशलों के उन्नयन हेतु सर्व शिक्षा अभियान सभी शिक्षकों को 20 दिवसीय वार्षिक सेवाकालीन प्रशिक्षण, शिक्षकों के रूप में नियुक्त अप्रशिक्षित शिक्षकों के लिए 60 दिवसीय समेकित पाठ्यक्रम और नवीन प्रशिक्षकों के लिए 30 दिवसीय प्रबोधन प्रशिक्षण प्रदान करता है।

''शिक्षक सहायता के माध्यम से शैक्षणिक निष्पादन की प्रगति'' कार्यक्रम के अन्तर्गत विभिन्न स्तरों पर शिक्षकों के निष्पादन और शिक्षक सहायता कार्य पद्धतियों के मूल्यांकन हेतु निष्पादन मानदण्ड बनाये गये हैं ताकि शिक्षकों के बेहतर निष्पादन हेतु सहायता प्राप्त की जा सके।

पाठ्यक्रम और पाठ्यपुस्तकों का नवीकरण

एसएसए के विकास हेतु सभी शिक्षकों को 500 रुपये प्रतिवर्ष की दर से वार्षिक शिक्षक अनुदान प्रदान किया जाता है। डाइट और बीआरसी कम लागत वाला अध्ययन सहायक सम्बन्धी विषय और विषय के विकास हेतु नियमित कार्यशाला और प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित करता है। राज्यों ने ऐसे अनुदान के इस्तेमाल पर मूल्यों और शिक्षकों को दिशा निर्देश जारी किये है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक प्राथमिक और उच्च प्राथमिक स्कूल को, अलग-अलग स्कूल के उपयोगी सामान की लागत के लिए 5000 और 7000 रुपये प्रतिवर्ष की दर से प्रदान किये जाते हैं, प्रत्येक स्कूल को अनुरक्षण के उद्देश्य से 7500

रुपये प्रति स्कूल प्रदान किया जाता है। 2008–09 में लगभग 11.82 लाख स्कूल अनुदान प्राप्त किए।

नये प्राथमिक स्कूल को 20,000 रुपये की दर से और उच्च प्राथमिक स्कूल को 50,000 रुपये की दर से एकमुश्त अनुदान प्रदान किया जाता है।

ब्लाक तथा क्लस्टर संसाधन केन्द्र के माध्यम से विकेन्द्रीकृत शैक्षिक समर्थन प्रदान किया जाता है। विशेष जरूरतमंद बच्चों के लिए समावेशी शिक्षा, प्रारम्भिक स्तर पर सभी श्रेणियों के बच्चों के लिए मुफ्त पाठ्यपुस्तकें, उपचारी शिक्षण, भाषा, गणित और विज्ञान में शिक्षण स्तर बढ़ाने के लिए शिक्षण संवर्धन कार्यक्रम, लड़कियों की शिक्षा, शिशु देखभाल और शिक्षा के लिए नवाचार, अनुसूचित जाति/जनजाति, अल्पसंख्यक समुदाय, शहरी क्षेत्रों के वंचित बच्चों के लिए कार्यक्रम तथा विशेषत: उच्च प्राथमिक स्तर के लिए कम्प्यूटर शिक्षा की व्यवस्था है

सामुदायिक भागीदारी

सर्व शिक्षा अभियान स्कूलों के सामुदायिक स्वामित्व और विकेन्द्रीकरण पर बल देता है। बस्ती स्तर पर योजना बनाने और स्कूल गतिविधियों के अनुवीक्षण के लिए समुदाय आधारित दृष्टिकोण अपनाया जाता है। स्कूल गतिविधियां उनकी श्रृंखलाओं के माध्यम से समुदाय की प्रभावी भागीदारी की अपेक्षा की जाती है जिससे स्कूल समुदाय की सामाजिक संस्था हो जाती है। स्कूल सम्बन्धित समूचे व्यय हेतु धन समुदाय आधारित स्थानीय निकायों के माध्यम से प्राप्त होता है जो सर्व शिक्षा अभियान निधि का लगभग 50% है।

सर्व शिक्षा अभियान निर्माण कार्य गतिविधियों में स्थानीय समुदाय की भागीदारी को बढ़ावा देता है ताकि उनमें अपनेपन के भाव पैदा हो। ऐसा निर्माण कार्य जो समुदाय द्वारा अपने आप किया गया ठेकेदार द्वारा किए गए कार्य से बेहतर गुणवत्ता वाला प्रमाणित हुआ है। समुदाय से यह भी अपेक्षा की जाती है कि वह जगह के चुनाव में, डिजाइन पसंद करने में और स्कूल की सुविधाओं को बनाये रखने में सकारात्मक भूमिका निभाएं। देश भर में ऐसे अनेक उदाहरण हैं जहां समाज में अपने गांवों ने स्कूल के विकास के लिए धन और श्रम का महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

सर्व शिक्षा अभियान स्थानीय सामग्री और प्रौद्योगिकी के प्रयोग पर भी बल देता है। इससे स्कूल को स्थानीय पहचान मिलती है और मरम्मत एवं अनुरक्षण का कार्य भी सुगम होता है।

बाल हितैषी स्कूल वातावरण में बाल केन्द्रित स्कूल भवन एवं इसके पास–पड़ोस का भी समावेश होता है। सर्व शिक्षा अभियान के अन्तर्गत बने स्कूल प्रकाशकीय एवं

आकर्षक होते हैं। उसमें प्रकाश, संवाहन, संग्रह, प्रदर्श एवं चाक बोर्ड की पर्याप्त व्यवस्था रहती है। प्रत्येक स्कूल को इस तरह डिजाइन किया जाता है कि एक बच्चे को पर्याप्त जगह मिले ताकि क्रियाकलाप आधारित शिक्षा को प्रोत्साहन मिले और भवन अवरोधक रहित हो।

सर्व शिक्षा अभियान यह ध्यान रखता है कि स्कूल कैम्पस साफ-सुथरा एवं स्वास्थ्यकर सुरक्षित एवं संरक्षित हो। उसमें प्रसाधन, पीने का पानी, चहारदीवारी, विद्युतीकरण, दोपहर के भोजन के रसोईघर, खेल के मैदान एवं प्रकृति चित्रण की व्यवस्था से युक्त हो। निर्माण की गुणवत्ता सुनिश्चित करने के लिए पर्यवेक्षण और अनुवीक्षण प्रणाली को समाहित किया गया है। समुदाय की सामाजिक समीक्षा इस पर्यवेक्षण प्रणाली का आधार है। निर्माण की विस्तृत नियम पुस्तिका बनाई व शिक्षकों एवं सभी राज्यों के सामुदायिक सदस्यों के वितरित की गई है जिसमें निर्माण के मूलभूत तत्वों, जांच पड़ताल एवं सामंजस्य की व्याख्या की गई है।

समुदाय की सहायता के लिए अभियंताओं का एक दल होता है जो उन्हें तकनीकी संबल और निर्देश देता है। अभियंताओं एवं बाहरी मूल्यांकन कर्ताओं की तत्काल जांच से प्रणाली की पारदर्शिता और संतुलन सम्भव होता है। इसके अलावा विभिन्न राष्ट्रीय एवं राज्य संस्थाओं और विशेषज्ञों, निर्माताओं से कार्यान्वयन एवं मूल्यांकन का जो सहयोग मिलता है, इससे गुणवत्ता और सुदृढ़ होती है।

दिसम्बर 2002 में अधिनियमित, संविधान (86वां संशोधन) अधिनियम 2002, का उद्देश्य संविधान के भाग III (मूलभूत अधिकार) में एक नया अनुच्छेद 21ए जोड़कर 6-14 वर्ष के आयु-समूह में सभी बच्चों के लिए मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा को एक मूलभूत अधिकार बनाना है। नया अनुच्छेद 21ए शिक्षा का अधिकार 6 से 14 वर्ष तक की आयु के सभी बच्चों को मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा प्रदान करता है।

सर्व शिक्षा अभियान के तहत लड़कियों की स्कूल में वापसी शिविर, बड़ी लड़कियों के लिए ब्रिज पाठ्यक्रम, कक्षा VIII तक मुफ्त पाठ्यपुस्तक, 50 प्रतिशत महिला शिक्षकों की भर्ती, लड़कियों के लिए अलग से प्रसाधन, पहुँच और समानता सुनिश्चित करने के लिए 98 प्रतिशत ग्रामीण जनता के पास 1 कि.मी. के अन्दर स्कूल है, स्कूल के बाहर बच्चों को वैकल्पिक स्कूलिंग प्रदान करना, उच्च प्राथमिक स्तर पर कम आबादी वाले पहाड़ी तथा जनजातीय क्षेत्रों में आवासीय हॉस्टल का प्रावधान करना, विकलांग बच्चों की शिक्षा के अन्य बच्चों के समान, अधिक विकलांग बच्चों हेतु जिला मुख्यालय में ही छात्रावास के साथ विशेष मुहैया, नि:शक्त व्यक्तियों को व्यावसायिक प्रशिक्षण देने के लिए आवश्यक

व्यवस्थाएँ, नि:शक्त बच्चों की शिक्षा हेतु स्वैच्छिक प्रयासों को प्रोत्साहित करना। गुणवत्ता के लिए तिमाही कार्यशालाएं (बहु भाषा शिक्षा, विज्ञान और गणित शिक्षकों की संसाधन वृद्धि, बहु ग्रेड बहु स्तरीय अध्यापन, उच्च प्राथमिक स्तर पर गुणवत्ता सुधार के लिए कार्यनीतियां उच्च प्राथमिक स्तर पर विज्ञान और गणित, अध्ययन सुधार कार्यक्रम, कम्प्यूटर संवर्धित अध्ययन। सामुदायिक स्तर का ढाँचा व्यावसायिक शिक्षा कार्यक्रम, अभिभावक शिक्षक संघ स्थापित करना, एक समर्पित प्रबन्धक ढांचा प्रदान करना आदि प्रमुख कार्य हैं।

सर्व शिक्षा अभियान कार्यक्रम के आरम्भ वर्ष यानी 2000-01 में यह उद्देश्य तय किया गया था कि 2010 तक देश के 6-14 वर्ष आयु के बच्चों को मुफ्त एवं गुणवत्तापूर्ण शिक्षा मुहैया करायी जायेगी। इस दृष्टि से चालू वर्ष ही लक्षित वर्ष है, उस पर शिक्षा का अधिकार कानून भी पास हो चुका है। इस कार्यक्रम को लागू किया गया है। इस कार्यक्रम को सफलतापूर्वक चलाने के लिए केन्द्र सरकार को 70 फीसदी खर्च खुद वहन करना है। पिछले साल इस मद में 26,800 करोड़ रुपये मिले थे। वहीं इस वर्ष 2010-11 में यह राशि 34.711 करोड़ रुपये हो गयी है। बुनियादी शिक्षा को मजबूत बनाने के उद्‌देश्य से 2010-11 में आवंटित राशि का इस्तेमाल पूर्ण निष्ठा एवं प्रतिबद्धता से किया गया तो बुनियादी शिक्षा की स्थिति में सुधार होगी। क्योंकि प्राथमिक शिक्षा की जमीन पर ही उच्चतर एवं विश्वविद्यालयी शिक्षा को मजबूत बनाया जा सकता है। बेहतर शिक्षा ज्ञान आधारित समाज निर्माण, गुणवत्तापूर्ण बच्चों की तालीम पर केन्द्र सरकार की आवंटित राशि का इस्तेमाल सही मायने में विजन 2020 का भारत गढ़ने में किया जायेगा। राशि की उपलब्धता कई तरह के अवरोधों को समाप्त कर देती है, लेकिन मानवीय कमजोरियों को नहीं। बुनियादी स्कूली शिक्षा को बेहतर बनाने में केन्द्र सरकार के इस प्रयास को सफल बनाने में हमारे सामाजिक प्रयास ज्यादा मायने रखेंगे।

सन्दर्भ

वार्षिक रिपोर्ट, 2002-2003, मानव संसाधन विकास मंत्रालय।

वार्षिक रिपोर्ट 2005-06 मानव संसाधन विकास मंत्रालय।

वार्षिक रिपोर्ट 2008-09 मानव संसाधन विकास मंत्रालय।

वार्षिक रिपोर्ट 2004-2005 मानव संसाधन विकास मंत्रालय, 2002-2003 मानव संसाधन।

प्रारम्भिक शिक्षा विभाग राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद उ.प्र. इलाहाबाद, भारत, 2004

योजना, मार्च, 2010

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 20, अंक 1, अप्रैल 2013

शोध टिप्पणी/संवाद

विद्यार्थियों द्वारा गणित अधिगम प्रक्रिया का गुणात्मक अध्ययन

एस.के. त्यागी* और **सीमा शर्मा****

सारांश

विद्यार्थियों द्वारा गणित अधिगम की प्रकिया की समुचित व्याख्या संभव प्रतीत नहीं होती है। इसकी प्रमुख वजह शोध द्वारा उत्तरित किये गये प्रश्नों का एक दूसरे से भिन्न भिन्न होना है। समस्याएं सूक्ष्म स्तर की हैं तथा इन्हें छोटे-छोटे स्तर पर तोड़कर इनके उत्तर देने का प्रयास हुआ है। एक समस्या से दूसरी समस्या पर पहुंचने के लिए पुल नहीं है अथवा कहा जाए कि संदर्भ और समग्रता की कमी है। फलस्वरुप गणित की अधिगम प्रकिया का अपनी समूचे संदर्भों में पर्याप्त उद्घाटन नहीं हो पाता है। अत: जरूरत है कि विद्यार्थियों द्वारा गणित अधिगम को गुणात्मक शोध उपागम द्वारा संबोधित किया जाए। ऐसी ही एक शोध विधि घटना क्रियावादी विधि है। इस विधि का उपयोग प्राय: मानवशास्त्री आदिम जातियों की संस्कृति और रहन-सहन की शैलियों के अध्ययन हेतु करते हैं। इसमें शोधकर्ता वर्षों तक लक्ष्य समूह के साथ स्वाभाविक तरीके से रहता है तथा इनका प्राकृतिक हिस्सा बन जाता है। इस प्रकार वह आदिवासी लोगों के जीवन मूल्यों, परंपराओं और रिवाजों का सही बोध कर पाने में समर्थ रहता है जो कि एक बाहरी अवलोकनकर्ता के लिए भेद पाना संभव नहीं हो सकता है। अत: शोधार्थी ने कक्षा 8 के विद्यार्थियों की गणित अधिगम प्रक्रिया का अध्ययन भी इस विधि द्वारा करने की योजना बनाई।

शिक्षा जीवनपर्यन्त चलने वाली विकास की प्रकिया है। बालक की जन्मजात् शक्तियों के

* विभागाध्यक्ष, शिक्षा अध्ययन शाला, देवी अहिल्याबाई विश्वविद्यालय, इंदौर, मध्य प्रदेश।
** सहायक प्राध्यापक, आर.एल.एस. शिक्षा महाविद्यालय, होशंगाबाद, मध्य प्रदेश।

स्वभाविक एवं प्रगतिशील विकास में गणित का महत्वपूर्ण स्थान है। वर्तमान में बालक निष्क्रिय श्रोता मात्र ही नहीं समझा जाता बल्कि तर्क वितर्क की प्रक्रिया में भी भागीदार होता है। शिक्षण प्रकिया में अध्यापक का कर्तव्य है कि, वह बालक को सक्रिय बनाकर उसकी शारीरिक, मानसिक शक्तियों, योग्यताओं, रुचियों एवं रुझान का अध्ययन करे, और उसकी क्षमताओं के अनुकूल शिक्षा प्रदान करे। गणित के प्रति रुचि रखने वालों को गणित की समस्याओं को सुलझाने में एक विशेष प्रकार का आनंद आता है। जीवन का कोई पहलु गणित विषय के प्रयोग के बिना अछूता नहीं है। वर्तमान समय में गणित हमें प्रत्येक स्थान पर दिखाई देता है। वर्तमान समय विज्ञान और उन्नत तकनीकी का समय है। मनुष्य द्वारा कदम-कदम पर यंत्रों और मशीनों का सामना किया जाता है। जो गणित और विज्ञान के मूल सिद्धांतों द्वारा संचालित होते हैं। गणित न केवल दैनिक जीवन में उपयोगिता की दृष्टि से महत्वपूर्ण है, बल्कि यह सभी विषयों को आधार प्रदान करता है। गणित मनुष्य जीवन का गणनात्मक पक्ष है जिसमें जीवन से संबंधित वस्तुओं के बारे में गणना की जाती है।

प्रारंभ में गणित को ही केवल ज्ञान माना जाता था। पाइथागोरस के समय में साहित्य और भाषण कला के ज्ञान के अतिरिक्त इसे शेष ज्ञान माना जाता था इसलिए गणित को सभी विषयों का जनक भी कहा गया है। गणित अंकों का एक खेल है जिसमें कुछ नियमों का पालन किया जाता है। ये नियम गणित के प्रांरभिक नियम कहे जाते हैं अन्य नियम इन्ही नियमों का विकसित रुप हैं। कॉरेन्ट और राबिन्स के अनुसार गणित मानव मस्तिष्क द्वारा वर्णित इच्छाओं का क्रियात्मक पक्ष है। यह चिंतनशील कारक व सौंदर्यात्मक अनुभूति की इच्छा रखता है। यह व्यक्तिगत व सामान्य रुप में विश्लेषात्मक व रचनात्मक तर्क व अन्तर्निहित शक्तियों का प्रांरभिक तत्व है। यह विरोधी तत्वों तथा संश्लेषण हेतु संघर्षयुक्त जीवन से संबोधित होकर व्याख्या करता हुआ उपयोगी व उच्च स्तरीय गुणों का गणित विज्ञान है। अरस्तु के अनुसार चिनतशील प्राणी ही मनुष्य है। भाषा के अतिरिक्त, चिंतन विकसित करने का सबसे समर्थ साधन गणित कहा गया हैं। प्रसिद्ध गणितज्ञ हेनरी का कहना है कि, गणित में हम सरल व स्वंयनिष्ठ तथ्यों से ऐसे निष्कर्ष निकालतें हैं जो स्वयं इतने सरल व स्वयंसिद्ध नहीं होते हैं, अर्थात् गणित आवश्यक निष्कर्ष निकालने का विज्ञान हैं। इसी बात की पुष्टि बट्रेन्ड रसल के इस कथन से होती हैं कि, गणित में हम यह नहीं जानते हैं कि, हम क्या कर रहे हैं? गणित यह बताता है कि यह कथन किसी भी चीज के बारे में सही है तो यह दूसरा कथन उसी चीज के बारे

में सत्य होगा। निष्कर्षों की यह निश्चितता ही गणित को सभी विज्ञानों में अधिक सुनिश्चित और सृदृढ़ बनाती है।

समस्या का शीर्षक

कक्षा VIII के विघार्थियों द्वारा गणित अधिगम का गुणात्मक अध्ययन

शोध का प्रकार

प्रस्तुत शोधकार्य घटना क्रियाविधि शोध द्वारा किया गया है जो कि गुणात्मक शोध है। इस शोध की प्रमुख विशेषताएं निम्न हैं:

1. घटना क्रियाविधि शोध में शोधकर्ता स्वयं ही लक्ष्य समूह के साथ रहकर उनकी क्रियाओं का अवलोकनकरता है अत: यह शोधकार्य समग्र व एकीकृत होता है।
2. इस शोधकार्य में संदर्भिता होती है। विद्यार्थियों का अध्ययन उनके समूचे सामाजिक, सांस्कृतिक आदि संदर्भो में किया जाता है।
3. शोध का उददेश्य विशिष्टता का अध्ययन होता है न कि सामान्यीकरण।
4. प्राय: शोध कार्य में पूर्व परिकल्पनाओं का निर्माण किया जाता है। फिर उन परिकल्पनाओं के आधार पर ही शोध कार्य पूर्ण होता है जबकि घटना क्रियाविधि शोध पूर्व संकल्पनाओं रहित होता है। परिकल्पनाएं यदि बनती भी हैं तो पूर्व निर्धारित न होकर शोधार्थी के अनुभव से उपजती हैं।
5. शोध अभिकल्प परिवर्तनशील व अस्थायी होता है। पारंपरिक शोध की तरह अध्ययन योजना अध्ययन पूर्व नहीं बनाई जाती है।
6. अर्थोपादन किया जाता है। इस शोध में अर्थ खोजने का प्रयास किया जाता है। क्रियाओं को उद्देश्य, तात्पर्य आदि के पदों में समझा जाता है।
7. शोध कार्य स्वाभाविक परिस्थितियों में ही किया जाता है। पारंपरिक शोध में प्राय: चरों के नियंत्रण पर काफी ध्यान दिया जाता है, किन्तु यह शोध दी गई परिस्थितियों में ही किया जाता है।

अध्ययन प्रश्न

प्रस्तुत अध्ययन में निम्न प्रश्नों के उत्तर खोजने का प्रयास किया गया है:

1. छात्रों के पारिवारिक शैक्षिक संदर्भ क्या हैं जिनमें सीखने की प्रक्रिया संपन्न होती हैं?

2. छात्रों का गणित के प्रति दृष्टिकोण क्या है?
3. छात्रों में गणित के प्रति भय, उदासीनता अथवा अरुचि के विभिन्न कारण कौन से हैं ?
4. छात्र प्राय: गणित की संकल्पनाओं को किस तरह धारण करते हैं? साथ ही छात्र प्राय: हल करने को कौन से छद्म तरीकों का इस्तेमाल करते हैं?
5. छात्रों में गणित के प्रति अनुराग कैसे उत्पन्न किया जा सकता है?
6. छात्र समस्याओं को हल करते समय किस प्रकार सोचते हैं?
7. छात्रों द्वारा की जाने वाली त्रुटियों के लिए कौन-कौन से कारक जिम्मेदार हैं?
8. छात्रों का आत्म विश्वास कैसे बढ़ाया जाए ?

अध्ययन का सीमांकन

1. वर्तमान अध्ययन में कक्षा 8 के चुनिंदा प्रकरण लिये गए विद्यार्थियों से बातचीत के उपरांत प्रकरणों का चयन किया गया।
   विद्यालय सी.बी.एस.ई., नई दिल्ली द्वारा संबद्ध है। अत: पाठ्यक्रम भी इसी बोर्ड का रहा।
2. छात्रों का औपचारिक माध्यम अंग्रेजी है किन्तु हिन्दी का भी समुचित प्रयोग किया गया चूंकि प्रमुख उददे्श्य सीखना है, और भाषा का बंधन महत्वहीन है।

लक्ष्य समूह

लक्ष्य समूह का चयन शोधार्थी की सुविधा एवं शोध उददे्श्यों के अनुसार किया गया। इसमें यूनिवर्सिटी इनोवेटिव स्कूल, इंदौर के कक्षा 8 के सभी 4 विद्यार्थियों को शामिल किया गया। सभी विघार्थी 13 से 15 आयु वर्ग के थे। विद्यालय सी.बी.एस.ई. नई दिल्ली द्वारा संबद्ध है, अत: पाठ्यक्रम भी इसी बोर्ड का था। छात्रों का औपचारिक माध्यम अंग्रेजी है किंतु हिन्दी का भी समुचित प्रयोग किया गया, चूंकि प्रमुख उद्देश्य सीखना है और भाषा का बंधन महत्वहीन है। सभी छात्र छात्राएं निम्न-मध्यम, सामाजिक-आर्थिक स्तर के थे।

छात्र	छात्राएं	योग
2	2	2

शोध उपकरण

यद्यपि प्रमुखतः प्रतिभागी अवलोकन एवं इकाई अध्ययन द्वारा आँकड़े प्राप्त किये गए तथापि अन्य उपकरणों का भी सहारा लिया गया। इन उपकरणों का विवरण निम्नानुसार है-

गणित के प्रति दृष्टिकोण

गणित के प्रति दृष्टिकोण का मापन दृष्टिकोण मापनी के द्वारा किया गया। इस मापनी में गणित से संबंधित 20 कथन दिये गये थे। प्रत्येक कथन के आगे तीन विकल्प दिए गए जो कि, सहमत /असहमत /अनिश्चित थे। कथन को ध्यान से पढ़कर अपने विचार के अनुसार योग्य विकल्प चुनकर उस स्तंभ में सही का निशान लगाना था। इस मापनी के लिए कोई समय सीमा निर्धारित नहीं की गई थी। दृष्टिकोण मापनी में गणित की विषय वस्तु, गणित शिक्षक, गणित अधिगम, गणित -गृह एवं कक्षा कार्य, गणित विषय की अन्य विषयों से तुलना, गणित की शिक्षण विधि, गणित व समय सदुपयोग पहलुओं पर कथन बनाए गए थे।

गणित में अरुचि के कारण

गणित में अरुचि के कारणों का अध्ययन करने हेतु अनुसूची का प्रयोग किया गया। इस अनुसूची में कुल 30 गणित विषय में अरुचि से संबंधित कथन दिये गये थे। प्रत्येक कथन के आगे हां या नहीं लिखा गया था। इस मापनी के लिए कोई समय सीमा निर्धारित नहीं की गई थी।

विद्यार्थियों के पालकों से साक्षात्कार

विद्यार्थियों की सामाजिक, आर्थिक स्थिति, पारिवारिक स्थिति, पारिवारिक वातावरण, आस-पड़ोस का वातावरण, मित्रों की जानकारी आदि का अध्ययन हेतु विद्यार्थियों के पालकों से साक्षात्कार लिया गया।

कक्षा कार्य का रिकार्ड

कक्षा कार्य के रिकार्ड का अध्ययन शोधार्थी द्वारा स्वयं प्रत्येक विद्यार्थी के साथ निरंतर अध्यापन -अधिगम कार्य के दौरान किया गया तथा कार्य का विवरण सतत् एवं डायरी के रुप में दर्ज कया गया। यह ध्यान रखा गया कि विवरण के तथ्यात्मक अंश एवं उन पर शोधार्थी की निजी टिप्पणी अलग-अलग रखी जाये। प्रयुक्त विधि में प्रतिभागी अवलोकन व इकाई अध्ययन विधि सम्मिलित रहीं।

विद्यार्थियो के शैक्षिक रिकार्ड

विद्यार्थियों के शैक्षिक रिकार्ड विषय शिक्षिका से प्राप्त किए गए।

शोध विधि

प्रस्तुत शोध अध्ययन घटना क्रिया विधि उपागम द्वारा संपन्न किया गया। इस शोध का प्रमुख उद्देश्य सामान्यीकरण नहीं, वरन् विद्यार्थियों की अमूर्त अधिगम प्रकिया का प्रकाशन और स्थूलीकरण था। अत: शोधविधि मात्रात्मक निष्कर्षात्मक न होकर गुणात्मक, विवरणात्मक रही। प्रत्येक विद्यार्थी के साथ निरंतर अध्यापन – अधिगम कार्य किया गया तथा कार्य का विवरण सतत् एवं डायरी के रुप में दर्ज किया गया। यह ध्यान रखा गया कि विवरण के तथ्यात्मक अंश तथा उन पर शोधार्थी की निजी टिप्पणी अलग-अलग रखी जाए।

प्रयुक्त विधियों में प्रतिभागी अवलोकन व इकाई अध्ययन विधि सम्मिलित रहीं। विद्यार्थियों के साथ प्रतिदिन शिक्षण सत्र रखे गए जिनकी कार्यप्रणाली कमोवेश निम्नानुसार थी:

1. बातचीत के द्वारा विद्यार्थियों के करीब आना।
2. अधिगम का प्रारंभिक आकलन।
3. कार्यपात्रकों व गतिविधि द्वारा अधिगम कार्य।
4. शोधार्थी द्वारा निरीक्षण, निर्देशन एवं आकलन।
5. कार्य के दौरान संक्षिप्त नोट्स लिखना।
6. कार्य उपरांत विस्तृत डायरी लेखन करना।
7. लेखन का व्यवस्थीकरण, प्रस्तुतीकरण एवं विवेचना।

अध्ययन के परिणाम

विषयवस्तु विश्लेषण विधि का उपयोग कर प्राप्त तथ्यों का विश्लेषण किया गया। अध्ययन के परिणामों की प्रस्तुति अध्ययन प्रश्नों के अनुसार की गई है।

अधिगमकर्ताओं के शैक्षिक एवं पारिवारिक संदर्भ

अध्ययन प्रश्न 1 था ''छात्रों के पारिवारिक शैक्षिक संदर्भ क्या हैं ? जिनमें सीखने की प्रक्रिया संपन्न होती है।'' इससे संबंधित परिणाम निम्न हैं–

विद्यार्थियों के अधिगम को गहराई से समझने के लिए उनके पारिवारिक एवं विद्यालयीन संदर्भों को जानना आवश्यक था। परिवार, समाज, मित्र मंडल, विद्यालय, शिक्षक और गणित विषय के सापेक्ष विद्यार्थियों की स्थितियों की समझ हेतु विद्यार्थियों, उनके पालकों, शिक्षकों एवं प्राचार्य से बातचीत की गई। बातचीत के आधार पर प्रत्येक विद्यार्थी का प्रोफाईल तैयार किया गया।

चारों विद्यार्थियों में स्पष्ट भिन्नताएं हैं। उनके पारिवारिक शिक्षा सहायक, स्रोतों में आर्थिक संबल क्षमता में, योग्य मित्र मण्डली में, गत अधिगम अनुभवों में,स्वास्थ्य तथा व्यक्तित्वों में भारी अंतर है। किंतु समानताएं भी कम नहीं हैं। इन्हीं कारकों के परिप्रेक्ष्य में विद्यार्थियों की वर्तमान गणितीय उपलब्धि को समझना आसान है।

चारों ही विद्यार्थी निम्न मध्यम वर्गीय परिवार से हैं व अधिकांश विश्वविद्यालय के तृतीय व चतुर्थ श्रेणी कर्मचारियों के बालक हैं। परिवार में शैक्षिक स्थिति भी निम्न हैं। मम्मी दसवीं या बारहवीं पास हैं व पापा की शैक्षिक स्थिति भी सामान्य है। चारों ही बच्चों की मम्मी गृहणी हैं। आर्थिक स्थिति के चलते इस विद्यालय में बने रहने की मजबूरी हैं क्योकि दूसरे विद्यालयों में फीस ज्यादा है और विद्यालय घर से दूर भी है, स्कूल बस का किराया भी माता–पिता देने में असमर्थ हैं।

माता–पिता बच्चे की शैक्षिक उपलब्धि शैक्षिक प्रगति पर निगरानी रखने में असमर्थ हैं।, पापा पढ़ाई पर ध्यान देना चाहते हैं,पर स्थानांतरण, व्यवसाय, नौकरी आदि के कारण ध्यान नहीं दे पाते हैं। शिक्षण का माध्यम अंग्रेजी होना भी व्यवधान उत्पन्न करता है। क्योंकि, परिवार में कोई अंग्रेजी माध्यम से पढ़ा लिखा नहीं है।

जिस तरह विद्यार्थी येन केन प्रकारेण सही जबाब देने की जुगत भिड़ाने में लगे रहते हैं। उसी तरह शिक्षक–शिक्षिकाएं भी विद्यार्थियों को पास कराने की जुगाड़ में लगे रहते हैं। इसके लिए भी परीक्षा के पूर्व प्रश्न पत्र में दिये गये प्रश्नों को अभ्यास प्रश्न का नाम देकर बता देते हैं और उनका कई बार अभ्यास करा देते हैं। परीक्षा के दौरान भी यदि विद्यार्थी बात करते हैं तो उन पर ध्यान नहीं देते हैं। किसी भी तरह से विद्यार्थी पास हो जायें और विद्यालय तथा शिक्षकों का नाम खराब न हो ना ही उनकी गरिमा को कष्ट पहुंचे।

उन्हें इस बात की परवाह नहीं कि विद्यार्थी कितना गणित सीखते हैं जितनी इस बात की, कि कितने विद्यार्थी परीक्षा में सफल हो पाते हैं। इस तरह सीखने की प्रकिया के केन्द्र में होने के स्थान पर, गणित में पास होने लायक अंक प्राप्त करना केन्द्र में हो जाते है।

पढ़ने-पढ़ाने के तरीके भी पांरपरिक हैं। बच्चों को कक्षा में प्रश्न पूछने की स्वतंत्रता नहीं है। प्रश्न पूछने पर उत्तर कल पर टाल दिये जाते हैं। गृहकार्य देने और चेक करने दोनों में ही गंभीरता नहीं बरती जाती। अनुशासन की बेहद कमी है। अनुपस्थिति पर कोई कार्यवाही नहीं की जाती, कक्षा में देरी से आने पर भी कोई विशेष टोका टोकी नहीं होती है, और न ही कोई दण्ड दिया जाता है। फलस्वरुप विद्यार्थी मनमानी करने के लिए स्वतंत्र महसूस करते हैं।

विद्यार्थियों का गणित के प्रति दृष्टिकोण

अध्ययन प्रश्न -2 ''छात्रों का गणित के प्रति दृष्टिकोण क्या है ? इसके लिए दृष्टिकोण मापनी को प्रशासित किया गया साथ ही बातचीत का सहारा भी लिया गया जिससे प्राप्त निष्कर्ष इस प्रकार हैं :

- दीपश्री के दृष्टिकोण से गणित एक मनोरंजक विषय नहीं है। पंरतु उससे सोचने समझने की शक्ति का विकास होता है। उसे गणित विषय अन्य विषयों की तुलना में अच्छा नहीं लगता है। चूंकि गणित के सवाल बनते नहीं हैं इसलिये नींद आने लगती है। टयूशन भी कहीं नहीं जाती है। वह मानती है कि गणित का उपयोग हर क्षेत्र में होता है व गणित विषय के द्वारा ही वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास होता है, गणित विषय से विद्यार्थी आत्मनिर्भर बनता है। गणित के सवाल हल करना उसे अच्छा नहीं लगता है। उसका कहना है कि यह विषय केवल बुद्धिमान बालकों के लिए है। जो व्यक्ति गणित में होशियार होते हैं, वे उसे अच्छे लगते हैं। यदि पहेलियाँ बनती हैं तो गणित की पहेलियाँ बुझाना अच्छा लगता है, पर गणित का स्वरुप रोचक नहीं है। गणित करने में मजा नहीं आता है। सवालों को समझने हेतु आँकड़ों एवं उदाहरण की भरमार है। सामूहिक रुप से गणित पढ़ना और चर्चा करना उसे अच्छा लगता है। गणित पढ़ने से बुद्धि का विकास नहीं होता है, क्योंकि इसमें सूत्र बहुत ज्यादा होते हैं। गणित में तल्लीन होना उसे अच्छा नहीं लगता है। उसके दृष्टिकोण से गणित का उपयोग सभी विषय में किया जाता है। यदि सवाल बनते रहें तो गणित की सहायता से समय का सदुपयोग किया जा सकता है। भविष्य में वह गणित पढ़ना नहीं चाहती है।
- मयंक गणित को मनोरंजक विषय मानता है। उसके अनुसार गणित से सोचने समझने की शक्ति का विकास होता है। गणित विषय अन्य विषयों से अच्छा है।

इसका उपयोग जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में होता है। गणित विषय द्वारा ही वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास होता है। इससे विद्यार्थी आत्मनिर्भर बनता है। गणित के सवाल यदि बनते रहें तो उसे सवालों को हल करना अच्छा लगता है, नहीं तो नींद आने लगती है। गणित केवल बुद्धिमान बालकों का विषय है जो व्यक्ति गणित में होशियार होते हैं, उसे अच्छे लगते हैं। साथ ही उसे गणित का स्वरुप रोचक लगता है व गणित में पहेलियाँ बुझाना अच्छा लगता है। सवालों को समझने हेतु आँकड़ों व उदाहरण की भरमार है। सामूहिक रुप से गणित पढ़ना और चर्चा करना उसे अच्छा लगता है। गणित पढ़ने से बुद्धि का विकास होता है और नौकरी भी जल्दी मिलती है। चूंकि सूत्र ज्यादा हैं इसलिये उसे गणित में तल्लीन होना अच्छा नहीं लगता है। वह मानता है कि गणित का उपयोग सभी विषयों में किया जाता है। गणित की सहायता से समय का सदुपयोग किया जा सकता है। यदि कोई अच्छी टीचर पढ़ाए तो, भविष्य में वह गणित पढ़ना चाहता है।

- नवनीत के दृष्टिकोण से भी गणित एक मनोरंजक विषय है। गणित से सोचने समझने की शक्ति का विकास होता है परंतु गणित विषय अन्य विषयों की तुलना में अच्छा नहीं है। सूत्र याद नहीं होते हैं इसलिये गणित विषय से नींद आने लगती है। गणित का उपयोग हर क्षेत्र में होता है। इससे वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास होता है। गणित विषय से विद्यार्थी आत्मनिर्भर बनता है। गणित के सवाल हल करना नवनीत को अच्छा लगता है। वह मानता है कि गणित केवल बुद्धिमान बालकों का विषय है जो व्यक्ति गणित में होशियार होते हैं वे उसे अच्छे लगते हैं। गणित की पहेलियाँ बुझाना उसे अच्छा लगता है। गणित का स्वरुप रोचक होता है। परंतु सवालों को समझने हेतु आँकड़ों एवं उदाहरण की भरमार है। सामूहिक रुप से गणित पढ़ना और चर्चा करना नवनीत को अच्छा लगता है। गणित पढ़ने से बुद्धि का विकास होता है। गणित से नौकरी जल्दी मिलती है पर गणित में तल्लीन होना उसे ज्यादा अच्छा नहीं लगता है। वह मानता है कि गणित का उपयोग सभी विषयों में किया जाता है। गणित की सहायता से समय का सदुपयोग किया जा सकता है। भविष्य में वह गणित पढ़ना चाहता है।
- परिधि के दृष्टिकोण से गणित एक मनोरंजक विषय है। गणित से सोचने समझने की शक्ति का विकास होता है। परंतु गणित विषय उसे अन्य विषयों की तुलना

में अच्छा नहीं लगता है। गणित विषय से नींद आने लगती है। वह मानती है कि गणित का विकास होता है। गणित विषय से विद्यार्थी आत्मनिर्भर बनता है। गणित केवल बुद्धिमान बालकों का विषय है। सवालों को हल करना उसे अच्छा नहीं लगता है। जो व्यक्ति गणित में होशियार होते हैं वे उसे अच्छे लगते हैं। गणित की पहेलियाँ बुझाना उसे अच्छा लगता है। गणित का स्वरुप रोचक होता है। परंतु सवालों को समझने हेतु आँकड़ों एवं उदाहरण की भरमार है। उसे सामूहिक रुप से गणित पढ़ना और चर्चा करना अच्छा लगता है। परिधि का कहना है कि गणित पढ़ने से बुद्धि का विकास होता है। गणित से नौकरी जल्दी मिलती है गणित का उपयोग सभी विषयों में किया जाता है। गणित की सहायता से समय का सदुपयोग किया जा सकता है। गणित में तल्लीन होना उसे अच्छा लगता है, क्योंकि गणित की विधि याद नहीं रहती है इसलिये वह भविष्य में गणित विषय पढ़ना नहीं चाहती है।

सारांशत: रुप से कहा जा सकता है कि चारों ही विद्यार्थियों के दृष्टिकोण से निम्न निष्कर्ष निकलते हैं:

- गणित से सोचने समझने की शक्ति का विकास होता है।
- गणित विषय अन्य विषयों की तुलना में अच्छा है।
- गणित विषय से नींद आने लगती है।
- गणित का उपयोग हर क्षेत्र में होता है।
- गणित विषय द्वारा वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास होता है।
- गणित विषय से विद्यार्थी आत्मनिर्भर बनता है।
- गणित के सवाल हल करना उन्हें अच्छा नहीं लगता है।
- गणित केवल बुद्धिमान बालकों का विषय है।
- गणित की पहेलियां बुझाना अच्छा लगता है।
- सवालों को समझने हेतु आँकड़ों एवं उदाहरण की भरमार है।
- सामूहिक रुप से गणित पढ़ना और चर्चा करना अच्छा लगता है।
- गणित से नौकरी जल्दी मिल जाती है।
- गणित में तल्लीन होना अच्छा नहीं लगता है।
- गणित का उपयोग सभी विषयों में किया जाता है।
- गणित की सहायता से समय का सदुपयोग किया जा सकता है।

गणित में अरुचि के कारण

अध्ययन प्रश्न 3 था ''छात्रों में गणित के प्रति भय, उदासीनता अथवा अरुचि के विभिन्न कारण कौन से हैं?'' विद्यार्थियों में गणित के प्रति अरुचि के निम्न कारण पाये गये।

- अन्य विषयों की अपेक्षा कठिन होना
- बड़ी-बड़ी संख्या के सवालों का होना
- गणित का दैनिक जीवन से संबद्ध न होना।
- शिक्षकों का बालकों के प्रति उदासीन होना।
- शिक्षकों द्वारा दंडित करने का भय।
- कक्षा में प्रश्नों को शीघ्र हल करवाना।
- प्रश्नों का शीघ्र भूल जाना।
- मित्रों द्वारा कठिन विषय का दर्जा देना।
- भाषा का कठिन लगना।
- कक्षा का नीरस वातावरण होना।
- स्वतंत्रता का अभाव।
- शिक्षण विधि दोषपूर्ण होना।
- शिक्षक का अनाकर्षक व्यक्तित्व।
- घर पर सहयोग ना मिलना।
- शिक्षक द्वारा भेदभाव करना।
- सवालों को न समझ पाना।
- अधिक मात्रा में गृहकार्य देना।
- सवाल पूछने पर शिक्षक द्वारा डांटना।
- सूत्र याद न रख पाना।
- हल करने की विधि शीघ्र भूल जाना।

गणित की संकल्पनाओं का धारण

अध्ययन प्रश्न चार था ''छात्र प्राय: गणित की संकल्पनाओं को किस तरह धारण करते हैं? साथ ही छात्र प्राय: हल करने के कौन से छद्म तरीकों का इस्तेमाल करते हैं?'' शिक्षण अधिगम कार्य के दौरान शोधार्थी ने यह पाया कि –

1. विद्यार्थी गणित के प्रश्नों को मशीनी ढाँचे की तरह लेते हैं और बिना सोचे समझे हल करते हैं।

2. रटन्त विधि, अंधे नियमों, तरकीबों के सहारे सवालों को हल करने की कोशिश करते हैं।
3. लचीलेपन का अभाव है। भिन्न-भिन्न तरीकों, परिप्रेक्ष्यों में गणित के प्रश्नों के हल प्राप्त नहीं कर पाते हैं।
4. उत्तर भिड़ाने की जुगत में लगे रहते हैं।
5. शिक्षक की स्वीकृति प्राप्त करने की जुगाड़ करते हैं।
6. एकाकी बोध है।
7. परस्पर संबंधित करने की प्रवृत्ति नहीं है।

गणित के प्रति अनुराग के उपाय

अध्ययन प्रश्न पांच था – ''छात्रों में गणित के प्रति अनुराग कैसे उत्पन्न किया जा सकता है?'' इससे संबंधित निष्कर्ष निम्न हैं:

गणित शिक्षण के दौरान कक्षा में प्राय: अभ्यास नहीं करवाया जाता है। कक्षा में शिक्षक द्वारा प्राय: सवालों को बोर्ड पर हल करवा दिया जाता है और विद्यार्थी उसको कॉपी पर नोट कर लेते हैं जिससे उनमें तार्किक चिंतन, तथा गणितीय समझ विकसित नहीं हो पाती है। इसके अतिरिक्त स्कूलों की स्थिति संतोषजनक नहीं है। शिक्षक भी नवीन विधियों तथा तकनीकों में प्रशिक्षित नहीं होते हैं, शिक्षण प्रणालियां भी दोषपूर्ण हैं। वे विद्यार्थियों के स्तर के अनुसार नहीं हैं। शिक्षक अपने कर्तव्य के प्रति लापरवाह है। छात्रों का कोई निदानात्मक परीक्षण नहीं किया जाता है जिससे उनका उपलब्धि स्तर नहीं बढ़ पाता है। विद्यार्थियों के घर की परिस्थितियां भी उसकी उपलब्धि को प्रभावित करती हैं, जैसे- सुविधाओं का अभाव, अभिभावकों की उनके प्रति उदासीनता आदि, परन्तु प्रदर्शन, क्रियाएं, खेल, अभ्यास और सामूहिक गतिविधियों द्वारा विद्यार्थियो में अनुराग उत्पन्न किया जा सकता है। प्रश्नों को नये-नये तरीकों द्वारा हल करवाकर उनकी मौलिकता को प्रोत्साहित किया गया। सामूहिक चर्चा द्वारा प्रश्नों को हल करवाकर संप्रेषण में निरन्तरता लाकर उपलब्धि का विकास किया गया जिससे अनुराग उत्पन्न हुआ।

विद्यार्थियों के भ्रम एवं त्रुटियाँ

अध्ययन प्रश्न 6 था ''छात्र समस्याओं को हल करते समय किस प्रकार सोचते हैं, किस तरह की त्रुटियां करते हैं?'' निदानात्मक परीक्षण, कक्षागत कार्य व गृहकार्य प्रत्येक प्रश्न

पर अनुक्रिया का विश्लेषण करने पर ज्ञात किया गया कि छात्र निम्न प्रकार की त्रुटियां करते हैं:

- विद्यार्थी योज्य प्रतिलोम और व्युत्क्रम का अर्थ पूरी तरह नहीं समझते हैं।
- व्युत्क्रम बता सकते हैं, किंतु ऋणात्मक संख्या का व्युत्क्रम ज्ञात नही कर सकते साथ ही वे यह भी स्पष्ट नहीं कर सकते कि एक संख्या दूसरी संख्या का व्युत्क्रम है या नहीं।
- पूर्णांकों जैसे (–5) के व्युत्क्रम प्राप्त नहीं कर सकते हैं सिर्फ परिमेय संख्याओं का व्युत्क्रम निकाल सकते हैं।
- दो परिमेय संख्याओ के बीच परिमेय संख्या निकालने की प्रकिया नहीं जानते हैं।
- परिमेय संख्याओं को संख्या रेखा पर प्रदर्शित नहीं कर पाते हैं।
- विद्यार्थी पूर्णांक वाली संख्याओं का पक्षांतर तो सही करते हैं परंतु कुछ विद्यार्थी परिमेय संख्याओं के पक्षांतर में अंश व हर में से अंश को एक ही पक्ष में रखते हैं व हर को दूसरे पक्ष में ले जाते हैं, या चिन्ह लगाने में त्रुटि करते हैं।
- चारों ही विद्यार्थियों को लघुत्तम सामपवर्तक विधि द्वारा प्रश्नों को हल करना नहीं आता है।
- तिर्यक गुणा भी विद्यार्थियों द्वारा गलत किया गया।
- एकाग्र होकर सवाल हल नहीं करते।
- ऋणात्मक घात को हल करना भी विद्यार्थियों को नहीं आता है।
- भिन्नात्मक गुणनफल को विद्यार्थी नहीं समझ पा रहे हैं।
- प्रश्न में संख्याएँ उतारने में गलती करते हैं जो ध्यान केन्द्रण अथवा आत्मविश्वास की कमी से होता है।
- घात (0) का अर्थ नहीं जानते हैं।
- समान आधार वाली घातांकों को साधारण संख्याओं की तरह ही जोड़ देते हैं।
- घातांको के गुणा में त्रुटि करते हैं क्योंकि उन्हे घातांकों के नियम ही ज्ञात नहीं हैं।
- भिन्नात्मक आधार के प्रश्न नहीं कर सकते हैं।
- संख्याओं को काटने में गलती करते हैं।
- प्रश्न की भाषा ही नहीं समझते हैं पूछा कुछ गया है तो कुछ अन्य कर देते हैं।

अन्य त्रुटियाँ

- घटानें में त्रुटि जैसे हासिल या उधार कैसे लेते हैं, इसका ज्ञान नहीं है। ऋणात्मक चिन्ह को उचित स्थान पर नहीं लगाते हैं।
- गुणा (x) के चिन्ह को धन (+) जैसा लिखना, सही बटे को भिन्न के रूप में न लिख पाना।
- परिमेय संख्याओं को न जोड़ पाना।
- परिमेय संख्याओं को जोड़ने, घटाने, गुणा करने एवं भाग करने में त्रुटियां
- शब्दों के रुप में लिखित प्रश्नों के अर्थ को न समझ पाना।
- पहाड़े याद ना होना।
- परिमेय संख्याओं को काटने में गलती तथा बराबर का चिन्ह लगाने में गलती करना।
- आधार व घातांक को पहचानने में त्रुटियां।
- घातांक के नियमों को याद न होना।
- पक्षांतर में चिह्नों की त्रुटियां।

उपरोक्त त्रुटियों के निदान हेतु उपचार किया गया तथा पाया गया कि विद्यार्थियों को गणित उपलब्धि में लाभ हुआ है।

गणितीय त्रुटियों के कारक

अध्यन प्रश्न – 7 था ''छात्रों के द्वारा की जाने वाली त्रुटियों के लिये कौन–कौन से कारक जिम्मेदार हैं?'' इस शोध प्रश्न से संबंधित परिणाम निम्न हैं:

1. शोधार्थी का उददेश्य था विद्यार्थियों की त्रुटियों का निदानात्मक परीक्षण द्वारा अन्वेषण करना। स्पष्ट है कि छात्रों ने लगभग प्रत्येक प्रश्न पर किसी न किसी प्रकार की त्रुटियाँ की हैं। इसका कारण विद्यार्थियों के मूलभूत कौशलों का कमजोर होना, तथा कक्षा में शिक्षक का न्यूनतम अधिगम स्तर के अनुरूप शिक्षण न देना हैं। जिससे वे बुनियादी जानकारी हासिल नहीं कर पाते हैं और विविध प्रकार की त्रुटियाँ करने लगते हैं और कालांतर में यहीं त्रुटियाँ आदत का रूप धारण कर लेती हैं।
2. कक्षा में छात्रों को अधिक से अधिक अभ्यास प्रश्न करवाये जाने चाहिये अर्थात् प्रयत्न एवं मूल मनोवैज्ञानिक विधि द्वारा प्रश्नों को हल करवाया जाए।

3. वर्कशीट का उपयोग विद्यार्थियों की त्रुटि दर कम करने के संदर्भ में सार्थक रूप से प्रभावी पाया गया। इसका कारण यह है कि वर्कशीट में अभ्यास प्रश्नों पर अधिक जोर दिये जाने के कारण विद्यार्थियो की त्रुटियाँ कम हुई। त्रुटियाँ को कम करने के लिए नवीन विधियों व अधिकाधिक मात्रा में सहायक सामग्री का उपयोग करना चाहिये।
4. निदानात्मक परीक्षण में की गई त्रुटियों का निराकरण वर्कशीट द्वारा करने पर भी विद्यार्थियों द्वारा पुनः गल्तियाँ की गई। इसका कारण यह है कि विद्यार्थियो में गणित से संबंधित पूर्व ज्ञान बहुत कम था।
5. गणित अनुदेशन को मनोरंजक बनाने हेतु खेल विधि, पहेलियाँ, विद्यार्थियों की भावनाओं को स्वीकृति प्रदान करना आदि विधियों का उपयोग किया जा सकता है जिससे सभी विद्यार्थी गणित में रुचि लें व गणित को सहज विषय के रुप में ग्रहण करें।
6. रटने की प्रवृत्ति को कम किया जाये।

गणित कार्य में आत्मविश्वास

अध्ययन प्रश्न-8 था कि छात्रों का आत्मविश्वास कैसे बढ़ाया जाए? इससे संबंधित निष्कर्ष नीचे दिये गये हैं :

गणित विषय में छात्रों को आने वाली बाधाओं को दूर करके उनका आत्मविश्वास बढ़ाया जा सकता है। इसके निम्न तरीके हैं:

1. गृहकार्य की कठिनाईयों को दूर करके।
2. उनकी रुचि के अनुरुप गृहकार्य देकर।
3. सरल सवालों से कठिन सवालों की तरफ ले जाकर।
4. सरल उदाहरण देकर।
5. इस विषय के प्रति प्रेरित करके।
6. पुनरावर्तन द्वारा।
7. उनकी गलतियों को दूर करके।
8. स्पष्ट एवं पारदर्शक अध्ययन कराकर।
9. शिक्षक गणित को इस तरह पढ़ाएं कि विद्यार्थियों को आसानी से समझ में आ सके।

10. एक ही तरह के सवालों को बार-बार अभ्यास करवाना चाहिये।
11. गृहकार्य अति सरल एवं विद्यार्थियों के समझ के अनुरुप होना चाहिये।
12. अनौपचारिक गणितिक वातावरण स्थापित करके इस विषय को पढ़ाया जाए।
13. गणित विषय का जरुरी मार्गदर्शन प्रदान करके।
14. गणित विषय में उपयोग में आने वाले साधनों का उपयोग करके।
15. इस विषय के प्रति छात्रों में रुचि उत्पन्न करके।

संदर्भ ग्रंथ

राय, पारसनाथ, अनुसंधान परिचय, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा

पाठक, पी.डी. एवं त्यागी जी.एस.डी., सफल शिक्षण कला, लॉयल बुक डिपो मेरठ

डॉ. शर्मा आर.ए. शिक्षा अनुसंधान लॉयल बुक डिपो मेरठ

बुच, एम.वी.(संपादित) (1983-89), फोर्थ सर्वे ऑफ रिसर्च इन एजुकेशन (वॉल्यूम 1 व 2) नई दिल्ली, एन.सी. ई. आर. टी.

मल्ल, दिलीप कुमार : (1990) माध्यमिक स्तर पर गणित शिक्षण हेतु विभिन्न अनुदेशनात्मक आव्यूहों की उपलब्धि एवं रुचि के संदर्भ में तुलनात्मक अध्ययन एम.एड. लघु शोध प्रबंध, देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इंदौर

वर्मा. एस. (1992) माध्यमिक स्तर पर विद्यार्थियों की गणित में अरुचि, व त्रुटियों का अध्ययन एवं सहायक अनुदेशन द्वारा उनका निराकरण, एम.एड. लघु शोध प्रबंध, देवी अहिल्या विश्वविद्यालय इन्दौर

सोरोत, किशनसिंह (1987) स्कूली गणित शिक्षण का गणित के सामान्य उद्देश्यों की प्राप्ति में योगदान, एम.एड. लघु शोध प्रबंध, देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इंदौर।

जोशी, नीरज (2006) कक्षा आठवीं के विद्यार्थियें की पृष्ठभूमि विशेषताओं का उनके ज्यामितीय अवबोध पर प्रभाव, एम.एड. लघु शोध प्रबंध, देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इंदौर

जॉन होल्ट (2002) बच्चे असफल कैसे होते हैं?

शर्मा, आर. ए. (1983) शिक्षा तकनीकी, मेरठ, इन्टरनेशनल पब्लिशिंग हाऊस, मेरठ

सिद्धू कुलवीरसिंह (1990) गणित शिक्षण, स्टर्लिंग पब्लिशिंग लि., नई दिल्ली

पल एच.आर(2004) शैक्षिक शोध, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल

अग्रवाल, विजय (2006) पढ़ो तो ऐसे पढ़ो, इंद्रा पब्लिशिंग हाऊस, भोपाल

आर्य, पी.के.(2006) बच्चो की प्रतिभा कैसे निखारे, मनोज पब्लिकेशन्स, दिल्ली

बधेका, गिजुभाई (2001) माता पिता से, मांटेसरी बाल शिक्षण समिति, राजलदेसर

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 20, अंक 1, अप्रैल 2013

चिंतक और चिंतन

आचार्य नरेन्द्र देव के शैक्षिक विचारों की प्रासंगिकता

आर.पी. पाठक* और अमिता पाण्डेय**

आदर्श, निष्ठा एवं स्वतंत्र निर्णय-क्षमता के लिए सुविख्यात, बहुमूल्य व्यक्तित्व के निधि आचार्य नरेन्द्र देव जी उच्च कोटि के प्रतिभाशाली शिक्षाशास्त्री थे। प्रकाण्ड पांडित्य और शिक्षाशास्त्री के रूप में उनकी कीर्ति सभी ओर फैली थी। राजनीतिक गतिविधियों में संलग्न रहते हुए भी अध्ययन-अध्यापन में आचार्य जी की विशेष अभिरुचि थी। उन्होंने ज्ञान के साथ-साथ कर्म का भी पाठ पढ़ाया। राष्ट्र के उत्थान और जीवन के उत्कर्ष के लिए शिक्षा की समुचित व्यवस्था को वे आवश्यक समझते थे। इस संबंध में उनका दृष्टिकोण उदार और व्यापक था साथ ही साथ सर्वांगीण विकास की भावना से अनुप्राणित था। राष्ट्रीय एकीकरण एवं राष्ट्रहित की अभिवृद्धि, प्रगतिशील लोकतांत्रिक आचरण का गठन तथा व्यापक मानवीय दृष्टिकोण से अध्ययन एवं चिन्तन की क्षमता और हितवर्धक कार्यों में समुचित योगदान की शक्ति की वृद्धि को ही आचार्य नरेन्द्र देव जी अध्यापन तथा शिक्षा सुधार कार्यों का मूलमंत्र मानते थे। इसका ज्वलन्त उदाहरण आचार्य जी व विद्यापीठ का आदर्श संबंध है। लब्ध प्रतिष्ठित राजनेता बन जाने के बाद भी आचार्य जी विद्यापीठ के प्रति अपने कर्त्तव्यों का निर्वाह करते हुए वहाँ के अपने कार्य को स्थायी मानते रहे। आचार्य जी अप्रतिम विद्वान एवं बुद्धिजीवी के रूप में शिक्षा की अनिवार्यता को समझते हुए शिक्षा को प्रत्येक पक्ष पर अपने विचार व्यक्त किये हैं।

आचार्य जी शिक्षा के संबंध में व्यापक दृष्टिकोण अपनाते हुए शिक्षा के अर्थ, शिक्षा के उद्देश्य शिक्षा के प्रत्येक पक्ष पर अपने विचार व्यक्त किये हैं।

आचार्य जी शिक्षा के संबंध में व्यापक दृष्टिकोण अपनाते हुए शिक्षा के अर्थ, उद्देश्य, शिक्षा का माध्यम व प्राथमिक, माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा किस प्रकार हो या

* शिक्षा विभाग, श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विद्यापीठ, (मानित विश्वविद्यालय), नई दिल्ली
** शिक्षा विभाग, श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विद्यापीठ, (मानित विश्वविद्यालय), नई दिल्ली

शास्त्रवादी और परम्परावादी शिक्षा के बदले प्रजातांत्रिक शिक्षा व्यवस्था का क्या स्वरूप हो आदि विभिन्न शैक्षणिक बिन्दुओं पर सम्यक् रूप से विचार किया है। 13 फरवरी, सन् 1939 को आचार्य जी की अध्यक्षता में प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा के संबंध में जो प्रतिवेदन प्रस्तुत किया गया, उसमें आचार्य जी के सम्यक् विचारों का पहली बार शिक्षा का व्यापकता के संबंध में झलक देखने को मिलता है।

शिक्षा का अर्थ

मानव जीवन की उन्नति तथा राष्ट्र व समाज की उन्नति के लिए शिक्षा एक महत्वपूर्ण साधन है। संपूर्ण मानव के लिए शिक्षा अनिवार्य है। मानव को पूर्ण मानव व समाजोपयोगी नागरिक बनाना शिक्षा का कार्य है। शिक्षा द्वारा नवयुवकों में राष्ट्र के प्रति संपर्ण भाव उत्पन्न होना चाहिए। इस संदर्भ में आचार्य जी ने कहा है:

> ''जो स्नातक अपनी शिक्षा समाप्त करके बाहर जा रहे हैं उनके ऊपर एक विशेष दायित्व है। आज हमारा देश स्वतंत्र है। हमको अपने राष्ट्र का नवनिर्माण करना है। इस महान् कार्य के लिए हमको जीवन के विविध क्षेत्रों में ऐसे विद्याचरण-संपन्न नवयुवकों की आवश्यकता है जो सेवाभाव से प्रेरित होकर राष्ट्र के उत्थान के कार्य के लिए अग्रसर हों। समाज के विविध विभागों को पुष्ट और समुन्नत करना युवाओं का परम् कर्त्तव्य हो गया है।''

अत: आचार्य जी की दृष्टि में शिक्षा का स्वरूप इस प्रकार होना चाहिए कि वह नवयुवकों में राष्ट्रीय भावना का विकास करे, उसे राष्ट्र का समर्पित निष्ठावान सिपाही बनाये अर्थात् वह राष्ट्र की समुन्नति के लिए अग्रिम पंक्ति में खड़ा दिखे।

आचार्य जी शिक्षा का अर्थ मात्र साक्षर हो जाना ही नहीं माना है, क्योंकि केवल साक्षर हो जाने से ही कोई व्यक्ति साक्षर नहीं हो सकता। साक्षरता की उपादेयता तो तब सिद्ध होती है जब वह अपने आस-पास की बिखरी राजनैतिक व्यवस्था, आर्थिक व सामाजिक व्यवस्था में उत्पन्न समस्याओं को जानें और उनका समाधान करते हुए समाज को उन्नतशील दिशा देने का प्रयास करें अर्थात् अपने व्यवहार को सामाजिक एवं विवेकशील बनाये। आचार्य जी ने कहा भी है:

> राज्य का कर्त्तव्य है कि वह जनता को ऐसी शिक्षा प्रदान करे जिससे उसके अन्दर विवेचनात्मक शक्ति का विकास हो और उसमें आत्म-निर्माण की क्षमता आ सके, इसमें नागरिक शिक्षा का सबसे महत्त्वपूर्ण स्थान है, जिससे न केवल राष्ट्रीय बल्कि अन्तरराष्ट्रीय कर्तव्यों का पालन करने की भी शिक्षा दी जानी चाहिए।''

इस प्रकार आज राज्य का केवल इतना ही कर्त्तव्य नहीं है कि वह प्रजा के जान-माल की रक्षा करे और उनसे कर वसूल करे। समाज के विविध विभागों को पुष्ट करे। आज लोकतंत्र और स्वतंत्रता का युग है। अत: आवश्यक है कि राज्य सर्व साधारण के लिए शिक्षा की ऐसी आधारशिला तैयार करे कि मानवीय दृष्टिकोण उन्नति के शिखर पर हो।

आचार्य जी चाहते थे कि नयी शिक्षा पद्धति ऐसी हो कि विचारों और भावों की एकता परिपुष्ट हो सके जिससे कि मन, वाणी और आत्मा में एकात्मकता का भाव सन्निहित हो।

आचार्य जी ने जीविकोपार्जन की योग्यता का विकास भी शिक्षा का प्रमुख क्षेत्र माना है। आचार्य जी के विचार में–

> ''शिक्षा स्वत: पूर्ण होनी चाहिए, वह ऐसी होनी चाहिए कि विद्यार्थी जिसे प्राप्त कर जीविकोपार्जन के लिए किसी भी पेशे को अपना सकें और ऐसी आदतें ग्रहण कर सके जिससे उनके नैतिक जीवन का विकास हो और जो राष्ट्रीय एकता स्थापित करने में सहायक हो।''

आचार्य जी का कहना था कि आज की वर्तमान परिस्थितियों को दृष्टिगत रखते हुए विविध प्रकार की शिक्षा-व्यवस्था करनी होगी और युग की मांग के अनुसार शिक्षा में सकारात्मक परिवर्तन करना होगा क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में परिस्थितियां सदैव एक सी नहीं रहती है। अत:-

> ''शिक्षा का उद्देश्य देश के नवयुवकों को भावी जीवन के लिए तैयार करना है किन्तु जीवन की परिस्थिति में निरन्तर परिवर्तन होता रहता है, अतएव नवयुवकों की शिक्षा भी स्थिर जीवन-दर्शन पर आधारित नहीं हो सकती है। परिवर्तनशील जगत् की आवश्यकता पूरी करने के लिए शिक्षा को गत्यात्मक बनाना पड़ेगा।''

इस प्रकार आचार्य नरेन्द्र देव जी शिक्षा की वह रूपरेखा तैयार करना चाहते थे जो विश्व मानवता के शिखर पर ले जाये तथा समूचा विश्व सुख एवं शांति के साथ जीवन व्यतीत कर सके। आचार्य जी भारतीय सांस्कृतिक परंपरा जिसमें 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की ध ारणा की पोषण की बात की जाती है, इसके जबरदस्त हिमायती थे। आचार्य जी की दृष्टि में वास्तविक शिक्षा वह है जो व्यक्ति को राष्ट्रीय एकता के आदर्शों का पाठ पढ़ाती ताकि उसके अन्दर श्रद्धा एवं भाव के साथ देशसेवा एवं देशप्रेम की भावना जागृत हो। शिक्षा के द्वारा नवयुवकों में लोकतांत्रिक नेतृत्व व सहयोग की क्षमता का विकास हो। आचार्य जी का मानना था कि शिक्षा वह है जिसके द्वारा व्यक्ति में विवेचनात्मक शक्ति का विकास हो।

अत: आचार्य जी की दृष्टि में वास्तविक शिक्षा वह है जो मानव समाज का सर्वांगीण विकास करती हो। जीवन में लोकतांत्रिक मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा हो और सामाजिक व्यवहार के नवनीत संस्थानों का निर्माण हो। आचार्य जी यह भी मानते थे कि शिक्षा एक सतत् चलने वाली प्रक्रिया है जो मानव व्यवहारों को परिमार्जन करती है, इसमें जीवन पर्यन्त प्रगति होनी चाहिए ताकि इस बदलते हुए सामाजिक परिवेश में हम अपने आप को समायोजित कर सकें।

शिक्षा का उद्देश्य

आचार्य जी ने शिक्षा की व्यापकता को ध्यान में रखते हुए लोकतंत्र की स्थापना के लिए सर्वसाधारण की शिक्षा को परम आवश्यक माना है उनका कहना था कि–

> ''आज हम एक क्रांतिकारी युग में रह रहे हैं जहाँ हमारी पुरानी संस्थाएं, हमारे क्रमागत विश्वास, जीवन के प्रति हमारी दृष्टि, हमारे सामाजिक मूल्य, विचार-पद्धति, अर्थ-नीति और सामाजिक-नीति सब परिवर्तित हो रहे हैं। मनुष्य भय, संशय अनिश्चितता तथा सुरक्षा के अभाव के कारण चिन्ताग्रस्त होता है और बहुत से ऐसी वास्तविकता का सामना करने में घबराते हैं तथा सुदूर अवनि में अपना मुंह छिपाते हैं। जनता का ध्यान उसकी मौलिकता से दूर चली जाती है तथा दूषित वातावरण में जीवन के सामाजिक मूल्य और नैतिकता नष्ट हो जाती है। विद्वेष की इस अग्नि को बुझाना ही शिक्षा का परम् उद्देश्य है।''

अत: आचार्य जी की दृष्टि में शिक्षा का उद्देश्य एकांकी न होकर बहुउद्देश्यीय है क्योंकि शिक्षा मनुष्य को समाज में रहने, जीने और अपने आपको समायोजित करने की कला सिखाती है।

आचार्य जी के साहित्य को देखने, पढ़ने से प्रतीत होता है कि उन्होंने जहां शिक्षा के कुछ सामान्य उद्देश्य निर्धारित किये हैं तो वहीं उन्होंने प्राथमिक, माध्यमिक एवं विश्वविद्यालयी शिक्षा के कुछ विशिष्ट उद्देश्य निर्धारित किये हैं। आचार्य जी निम्नलिखित सामान्य शैक्षिक उद्देश्यों पर बल देते हैं:

नागरिकता की शिक्षा

आचार्य जी सुदृढ़ और जनतंत्रात्मक राष्ट्र की रचना में विश्वास रखते थे। उनका मानना था कि राष्ट्र के नवयुवकों को जीवन के लिए तैयार करना ही शिक्षा का उद्देश्य है। लोकतात्रिक चरित्र और जीवन का पूर्ण विकास ही उनकी शिक्षा पद्धति का मूल सामाजिक आदर्श था। उनका मानना था कि इस शिक्षा के द्वारा ही विद्यार्थियों के उदार

विश्व भावना तथा व्यापक लोकतांत्रिक मूल्यों और परंपराओं के प्रति आस्था को दृढ़ किया जा सकता है। आचार्य जी का कहना था कि– ''अगर शिक्षा को अपना काम ठीक तौर पर करना है तो उसको हमें नये समाज का निर्माण करने और दूसरे राष्ट्रों के साथ सौहार्दपूर्वक रहने के योग्य बनाना है। योग्य पुरुष पैदा करना ही काफी नहीं है, हमें तो ऐसे उत्तम नागरिक पैदा करना है जिनकी नागरिक भावना व सामाजिक आदर्श ऊँचे हों, जो अन्तरराष्ट्रीय शांति और समझदारी में विश्वास करते हों और जो जीवन के लोकतांत्रिक आदर्श पर पूरी आस्था रखते हों।

आचार्य जी उदार लोकतांत्रिक शिक्षा के निमित्त नागरिकता के समुचित प्रबंध को परम आवश्यक मानते थे। प्रत्येक बालक और बालिका को लोकतांत्रिक नागरिकता की सैद्धांतिक और व्यवहारिक शिक्षा देना वे नितांत आवश्यक समझते थे। लोकतांत्रिक मूल्यों एवं परंपराओं के प्रति आस्था को दृढ़ करना चाहते थे। आचार्य जी का कहना था– ''विद्यार्थियों को ऐसी नागरिक शिक्षा दी जाय कि जिससे उनमें 'न्याय' सहयोग और राष्ट्रीय एकता के आदर्शों के प्रति आदर भाव हो, उनमें 'देशसेवा और देशप्रेम के भाव' जागृत हो, उन्हें देश के परिस्थिति का ज्ञान हो और उनमें लोकतांत्रिक नेतृत्व और सहयोग की क्षमता का विकास हो।''

आचार्य जी विद्यार्थियों में सहयोग की भावना का विकास कक्षा तथा पाठ्योत्तर सामाजिक कार्यों के माध्यम से करना चाहते थे तथा इसके लिए उन्हें प्रोत्साहित करना चाहते थे।

आचार्य नरेन्द्र देव समिति की आख्या के आधार पर उत्तर प्रदेश में प्राथमिक तथा माध्यमिक शिक्षा का पुनर्गठन सन् 1939 में किया गया, जिसमें आचार्य जी ने नागरिक शिक्षा पर विशेष बल देते हुए कहा कि– ''अनुभव से यह देखा गया है कि स्थायी साक्षरता के लिए तथा उससे भी अधिक महत्वपूर्ण है, प्रत्येक बालक-बालिका को न्यूनतम संस्कृति का बोध कराना। ऐसे समाज को जो स्वतंत्र राष्ट्रीय जीवन के लिए प्रयत्नरत हो, जिसे सुनागरिकता का बोध कराना आवश्यक हो, कम अवधि की शिक्षा अपर्याप्त होगी।''

इस समय आचार्य जी नवयुवकों को सभ्य नागरिकता का पाठ पढ़ाना आवश्यक ही नहीं वरन् राष्ट्रीय जनतांत्रिक परिवेश में महत्वपूर्ण मानते थे।

जीविकोपार्जन की शिक्षा

आचार्य जी शिक्षा के संबंध में व्यापक दृष्टिकोण रखते थे, उनका मानना था कि शिक्षा का सच्चा ध्येय ऐसे व्यक्तित्व के निर्माण एवं विकास में सहायता पहुंचाना है, जिसमें

ज्ञान, सहज प्रवृत्तियां और भाव एकीभूत होकर एक संपूर्ण जीवन बने। साथ ही साथ छात्र जब विद्यालय से निकलकर समाज में आये तो वह स्वावलंबी हो। अर्थात् शिक्षा प्राप्त कर वह अपने जीविकोपार्जन के लिए उचित दिशा तय कर सके।

आचार्य जी की जीवन शैली अनूठी थी। वे प्रगतिशील जनतांत्रिक समाज की स्थापना करना चाहते थे। उनकी विचारधारा में सर्वतोमुखी प्रगतिशीलता और निरंतरता विकास था। राष्ट्र की महानकांक्षाओं से प्रेरित उनका नेतृत्व नवयुवकों को सदा सामाजिक आदर्शों और मानव मूल्यों की ओर संकेत करता था तथा उन्हें समाजोपयोगी विद्याचरण संपन्न बनने की दीक्षा देता था।

आचार्य जी शिक्षा को अधिक समाजसेवी बनाना चाहते थे। और इसके लिए उन्होंने 13 अप्रैल 1938 को गठित प्राथमिक व माध्यमिक शिक्षा संयुक्त समिति के अध्यक्ष की हैसियत से व्यावसायिक शिक्षा पर बहुत जोर दिया। इस समिति की रिपोर्ट 13 फरवरी 1939 को तैयार हुई। आचार्य जी की इस रिपोर्ट के आधार पर व्यावसायिक शिक्षा की तरफ कुछ ध्यान दिया जाने लगा। इस संबंध में मुकुट बिहारी जी लिखते हैं– ''प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा पुनर्गठन कमेटी की सिफारिशें किसी हद तक जरूर लागू की गयी। प्राथमिक शिक्षा के अन्तर्गत कला–कौशल की शिक्षा अनवार्य रूप से दी जाने लगीं और इसके आधार पर प्राथमिक शिक्षा को बुनियादी शिक्षा के नाम से संबोधित करना शुरू हो गया। हाँ व्यावसायिक शिक्षा की ओर अधिक ध्यान दिया जाने लगा और सामाजिक विषयों के पाठ्यक्रम का स्तर काफी ऊँचा उठ गया।''

स्पष्ट है कि आचार्य जी यह चाहते थे कि प्रत्येक व्यक्ति अपने पैरों पर खड़ा हो व अपनी आजीविका का निर्वहन स्वयं कर सके। साथ ही साथ राष्ट्र उत्थान में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निर्वहन कर सके।

विज्ञान व मानवीय भावना का समन्वयपरक उद्देश्य

आचार्य नरेन्द्र देव जी लोकतांत्रिक सामाजिक शिक्ष के साथ–साथ विज्ञान के महत्व को समझते हुए इसकी शिक्षा भी शिक्षार्थियों को प्रदान करना आवश्यक समझते थे। आचार्य जी का कहना था कि– ''यह युग ही विज्ञान और विशिष्ट विषयों के विशिष्ट अध्ययन का है। वैज्ञानिक साधनों के उपयोग द्वारा आज हमारी समस्याओं में से अनेक का समाधान हो सकता है। विज्ञान के द्वारा प्राकृतिक शक्तियों का उपयोग समाजहित के लिए किया जा सकता है और विज्ञान हमें युक्तियुक्त विचार करना भी सिखाता है।''

विज्ञान और मनोविज्ञान के नवीन सिद्धांतों ने मानव प्रकृति तथा जगत संबंधी हमारी अवधारणा को बदल डाला है। आचार्य जी का मानना था कि हमें अपनी

विचार-पद्धति विकसित करनी होगी। मनुष्य और प्रकृति के विषय में हमारे परंपरागत ज्ञान को अपना स्थान विज्ञान को देना होगा। ऐसी व्यवस्था अपनानी होगी कि अधिकाधिक संख्या में वैज्ञानिक पैदा हों। आचार्य जी का कहना था कि– ''प्रारम्भ से ही हमारे पाठ्यक्रम में विज्ञान का अनिवार्य स्थान रहे। हमें ऐसी व्यवस्था करनी होगी कि शिष्यों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण की अभिवृद्धि हो, अधिक से अधिक वैज्ञानिक पैदा हों और प्रत्येक विश्वविद्यालय में सभी क्षेत्रों में वैज्ञानिक शोध का समुचित प्रबंध हो।''

आचार्य जी ने विज्ञान के महत्व को स्वीकार करते हुए कहा कि 'आज विज्ञान एवं वैज्ञानिक विधियों से गरीबी, रोग, निरक्षरता, कृषि उत्पादकता, उद्योग धन्धों आदि में गुणात्मक सुधार करके सफलता प्राप्त कर सकते हैं। वह यह जानते थे कि मानव जीवन में जो भी समस्यायें हैं वह विज्ञान की सहायता के बिना सुलझायी नहीं जा सकतीं। आचार्य जी ने कहा है– ''हम अपनी समस्याओं को विज्ञान की सहायता के बिना नहीं हल कर सकते। अत: राष्ट्र की उन्नति के लिए विज्ञान की शिक्षा की उन्नति करना तथा गवेषणा की समुचित व्यवस्था करना राज्य का कर्त्तव्य है।''

परन्तु आचार्य जी विज्ञान की विनाशकारी शक्ति से भी पूरी तौर पर वाकिफ थे। वे कहा करते थे कि विज्ञान का बहुत ही जघन्य दुरुपयोग हो रहा है। संकुचित राष्ट्रीय भावनाओं के कारण, जो संसार व्यापी संघर्ष के मूल में है और जो राष्ट्रीय गर्व एवं पक्षपात का पृष्ठपोषण करती है, विज्ञान का उपयोग शत्रुराष्ट्र के नाश दूसरे राष्ट्रों के आर्थिक स्थिति को अधिकारगत करने के लिए किया जाता है। विज्ञान तो उसी दशा में वरदान स्वरूप है जब वह मानवीय मान्यताओं के साथ संबद्ध रहे।

इसलिए आचार्य जी वैज्ञानिक दृष्टिकोण और मानवीय भावना के सामंजस्य पर जोर देते थे। आचार्य जी का कहना था कि– ''वैज्ञानिक दृष्टिकोण को मानव-मूल्यों में आस्था रखकर ही आगे बढ़ाना है जिससे अश्रेयस्कर प्रयोजनों की सिद्धि के लिए विज्ञान का दुरुपयोग न हो।''

आचार्य जी चाहते थे कि वैज्ञानिक समाज यदि अपने उत्तरदायित्वों को समझते हैं तो वे अपने वैज्ञानिक शोधों एवं आविष्कारों का प्रयोग विश्व-मानव कल्याण के लिए करें अर्थात् अपनी हीन भावनाओं एवं प्रवृत्तियों का परित्याग कर दें। आचार्य जी का विश्वास था कि यदि विज्ञान तथा वैज्ञानिक दृष्टिकोणों की मानवता को ध्यान में रखकर अपनाया जाय तो बदलते हुए सामाजिक परिदृश्य में वरदान साबित होंगी। इसलिए वे अध्येताओं में 'वैज्ञानिक दृष्टिकोण' तथा 'सामाजिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों' के प्रति श्रद्धा दोनों ही पैदा करना चाहते थे।

विज्ञान और तकनीकी के विशेष महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए आचार्य जी ने कहा है कि– ''विज्ञान ने हमें विपुल संशाधन प्रदान किये हैं, यदि इसका उचित उपयोग किया जाय तो हम गरीबी और बीमारी दूर कर सकते हैं। और समृद्धि का युग ला सकते हैं।'' इसलिए आचार्य जी विज्ञान की शिक्षा को अनिवार्य मानते हुए उसके मानवीय मूल्यों के आधार पर विकास की चर्चा करते हुए कहते हैं– ''सार्वजनिक संस्कृति और सामान्य शिक्षा सब विशेष शिक्षा की पृष्ठभूमि में होना ही चाहिए ताकि अध्येता स्वतंत्र लोकतांत्रिक राज्य में नागरिक का कर्त्तव्य पालन कर सकें तथा विज्ञान और प्राविधिक ज्ञान का समाज के हित में सदुपयोग कर सकें।''

जनतंत्र के लिए जनतांत्रिक भावना के विकास की शिक्षा का उद्देश्य

प्रत्येक व्यक्ति राष्ट्र-निर्माण के कार्य में अपनी योग्यता के अनुसार अपनी भूमिका निर्वहन कर सकता है। यदि हम समूचे राष्ट्र के उज्ज्वल भविष्य की कामना करते हैं तो सबसे पहले हमें लोकतांत्रिक भावना को विकसित करना होगा आचार्य कहते हैं– ''लोकतंत्र की स्थापना के लिए सर्वसाधारण की शिक्षा की परम आवश्यकता है।'' सामाजिक और राजनीतिक चेतना उत्पन्न नहीं होगी तब तक लोकतांत्रिक पद्धति की सफलता संभव नहीं है- इसलिए जनतांत्रिक भावना के विकास के लिए व्यापक शिक्षा अत्यावश्यक है। आचार्य जी स्पष्ट रूप से यह मानते थे कि नये समाज के निर्माण के लिए, राष्ट्रीय और अन्तरराष्ट्रीय सौहार्द के लिए लोकतांत्रिक व्यवस्था में पूरी आस्था रखना आवश्यक है। लोकतांत्रिक चरित्र का विकास और जीवन में पूर्ण सामाजिक चेतना, समुचित शिक्षा-व्यवस्था पर ही निर्भर है। उनकी धारणा थी कि नवयुवकों में लोकतांत्रिक भावना एवं सिद्धांतों और परंपराओं के प्रति दृढ़ आस्था जागृत करके लोकतांत्रिक आदर्शों से अनुप्राणित लोकतांत्रिक उत्तरदायित्व को निभाने की क्षमता पैदा की जा सकती है। यदि भारतीय लोकतंत्र को सबल एवं स्वस्थ बनाना है तो जनता में स्वस्थ लोकतांत्रिक भावना एवं उत्तम चरित्र और व्यवहार जैसे आदर्शित गुणों को विकसित करना होगा, इसी मजबूत बुनियाद पर ही भारतीय लोकतंत्र का विकास तथा नव सामाजिक चेतना का प्रादुर्भाव संभव हो सकता है। भारतीय समाज में स्वस्थ मानसिकता, स्वस्थ चरित्र का निर्माण, राष्ट्रीय एवं अन्तरराष्ट्रीय सद्भावना जैसे लोकतांत्रिक गुणों का विकास तब ही संभव हो सकता है जब शिक्षा की व्यवस्था इस प्रकार हो कि उसके जनतांत्रिक भावना के विकास के उद्देश्यों को पूरा किया जा सके। जब तक जनसंस्कृति का निर्माण नहीं हो जाता तब तक ऐसे स्वतंत्र समाज की स्थापना नहीं हो सकती जिसमें प्रत्येक नागरिक सार्वजनिक कल्याण के लिए परस्पर सहयोग कर सके।

सन् 1949 में आचार्य जी लखनऊ विश्वविद्यालय के रजत जयन्ती समारोह के अवसर पर अभिभाषण करते हुए कहा था कि ''आज धर्म और संस्कृति के नाम पर हमारे देश के नौजवानों में घृणा और द्वेष की भावना को उभाड़ा जा रहा है। धार्मिक पक्षपात विहीन, असाम्प्रदायिक लोकतांत्रिक राज्य की कल्पना का मखौल उड़ाया जाता है और नवयुवकों को आगे आने वाले भविष्य की ओर देखने के बजाय सुदूर अतीत की ओर दृष्टि मोड़ने को कहा जा रहा है यदि अतीत को पुनर्जीवित करने का आन्दोलन नवयुवकों को अपनी ओर आकर्षित करने में सफल हुआ तो मेरी राय से देश के लिए यह सबसे बड़े खतरे की बात होगी।'' अत: आचार्य जी ने शिक्षाविदों की तरफ इशारा करते हुए कहा कि– ''यदि हम राष्ट्र को एक भयंकर संकट से बचाना चाहते हैं तो शिक्षाविदों का यह कर्त्तव्य है कि वे हमारे नवयुवकों में जनतंत्र की भावना को कूट-कूट कर भर दें और उन्हें जीवन के प्रति विवेकपूर्ण एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण से विचार करने का अभ्यस्त बनायें।''

आचार्य जी लोकतांत्रिक सामाजिक शिक्षा द्वारा विद्यार्थियों में सामाजिक नैतिकता का प्रसार करना चाहते थे, उनमें सामाजिक और आध्यात्मिक मूल्यों के प्रति आस्था पैदा करना तथा उन्हें आचरण सम्पन्न तथा समाजसेवी बनाना चाहते थे और इस पूर्ण विकसित व्यक्तित्व का समाज के साथ घनिष्ठ संबंध स्थापित कराना चाहते थे। उनका कहना था कि व्यक्ति समाज में रहकर ही अपनी पूर्णता की ओर अग्रसर हो सकता है।

28 मार्च 1938 को शिक्षा सुधार के लिए युक्त प्रान्त की सरकार ने प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा पद्धति के सुधार के लिए दो समितियां नियुक्त की। 13 अप्रैल, 1938 को सरकार ने घोषित किया कि ये दोनों समितियां एक संयुक्त समिति के अध्यक्ष के अन्तर्गत काम करेंगी। आचार्य जी इसके अध्यक्ष मनोनीत हुए। इस समिति में भी आचार्य जी ने जनतांत्रिकता की शिक्षा के लिए विशेष प्रयास किया एवं इसे पाठ्यक्रम में विशिष्ट स्थान दिया।

आत्मानुशासन की शिक्षा

आचार्य नरेन्द्र देव जी आत्मानुशासन को व्यक्तित्व के विकास के लिए न केवल आवश्यक मानते थे बल्कि अनुशासन को शिक्षा का प्राण समझते थे। आचार्य जी का विचार था कि– ''प्राचीन अनुशासन पद्धति आधुनिक लोकतांत्रिक युग के लिए उपयुक्त नहीं है। दमन पर आश्रित पद्धति के स्थान पर एक ऐसे अनुशासन की आवश्यकता है जो भय के बजाय आत्म-संयम को प्रोत्साहित करे।''

आचार्य जी दमनात्मक अनुशासन के विरुद्ध थे। उनका कहना था कि शिक्षा एक सहकारी प्रयत्न है, जिसमें अध्यापक और छात्र दोनों ही भाग लेते हैं। दोनों में आदर्श की एकता होने पर ही शिक्षा-संस्थाओं में सच्चे अनुशासन की स्थापना संभव है। अनुशासनहीनता को समाप्त करने के लिए हमें अनुशासन की पुरानी धारणा में भी संशोधन करना होगा और शिक्षक-शिक्षार्थियों के बीच सौहार्द्र स्थापित करना होगा। आचार्य जी चाहते थे कि शिक्षक समुदाय अपने निष्पक्ष और सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार से विद्यार्थियों को अपनी ओर आर्कषित कर उन्हें आत्मसंयम की शिक्षा दें, उनके जीवन को सद्भावनाओं से अनुप्राणित करें और अध्यक्ष की समुचित देख-रेख में स्कूल के प्रबंध में विद्यार्थियों के सहयोग को प्रोत्साहित करे। आचार्य जी यह मानते थे कि अनुशासन की समुचित व्यवस्था संस्था के अध्यक्ष का सामाजिक उत्तरदायित्व है जिसे विद्यार्थियों को नहीं सौपा जा सकता।

इस प्रकार आचार्य जी स्वानुशासन की भावना को विकसित करना शिक्षा का उद्देश्य मानते थे और दमनात्मक अनुशासन को व्यर्थ कहा करते थे। अत: स्कूल में स्वशासन संस्थायें कायम की जाए जिसके माध्यम से विद्यार्थियों में स्वानुशासन की भावना को पुष्ट किया जाये, उनमें सामाजिक प्रबंध की क्षमता पैदा की जाय ताकि स्कूल में अनुशासन और प्रबंध के स्तर को ऊंचा उठाया जा सके और सामाजिक तथा शैक्षिक परिवेश को उत्तम बनाया जा सके।

स्वावलंबन का उद्देश्य

आदर्श शिक्षा के स्वरूप की संकल्पना में आचार्य जी ने अनेकानेक शिक्षण बिन्दुओं पर अपने विचार प्रस्तुत किये। उन्होंने शिक्षण प्रक्रिया को इसप्रकार सुव्यवस्थित ढंग से संचालित करने को प्रयास किया कि विद्यार्थी विद्यार्जन करने के बाद जब विद्यालय से निकलकर समाज में आये तो वह किसी पर आश्रित न हो बल्कि स्वावलंबी हो और अपने जीवन का निर्वाह स्वयं कर सके। आचार्य जी सैद्धांतिक शिक्षा के साथ-साथ व्यवहारिक शिक्षा की तालीम को भी महत्वपूर्ण मानते थे। वे शिक्षा को अधिक से अधिक समाजोपयोगी बनाना चाहते थे। उनका विचार था– ''प्रत्येक व्यक्ति राष्ट्र-निर्माण के कार्य में अपनी योग्यतानुसार भाग ले सकता है। यदि हम अपने उज्ज्वल भविष्य में निष्ठा रखते हैं और इस बात का ध्यान रखते हैं कि अपने देश के भाग्य के निर्माण में हमारा क्या योगदान हो सकता है तभी हमकों कार्य करने का उत्साह मिल सकता है।'' इस प्रकार आचार्य जी प्रत्येक भारतीय नागरिक को न केवल स्वावलम्बी बनाना चाहते हैं बल्कि राष्ट्र-उत्थान में उसकी सहभागिता को भी सुनिश्चित करना चाहते थे।

आचार्य नरेन्द्र देव की अध्यक्षता में पहली बार 13 अप्रैल, 1938 ई. में युक्त प्रान्त की सरकार ने प्रारम्भिक और माध्यमिक शिक्षा पद्धति के सुधार के लिए संयुक्त समिति का गठन किया जो 28 मार्च, 1938 को गठित दो अलग-अलग उपसमितियों के रूप में कार्य कर रही थी। संयुक्त समिति ने प्रारंभिक और माध्यमिक शिक्षा के क्षेत्रों में शिक्षा पद्धति के पुनर्गठन के संबंध में बहुत व्यापक ढंग से जांच करके 13 फरवरी, सन् 1939 को अपनी रिपोर्ट तैयार की। इस रिपोर्ट के आधार पर व्यावसायिक शिक्षा की तरफ कुछ ध्यान दिया जाने लगा। प्राथमिक शिक्षा में कला-कौशल की शिक्षा अनिवार्य रूप से दी जाने लगी। व्यावसायिक शिक्षा की ओर अधिक ध्यान दिया जाने लगा।

इस प्रकार आचार्य जी प्रत्येक व्यक्ति को स्वावलम्बी बनाना चाहते थे ताकि देश का हर व्यक्ति अपने पैरों पर खड़ा हो व अपनी आजीविका का निर्वाह स्वयं कर सके। इस उद्देश्य की प्राप्ति तभी संभव है, जबकि शिक्षा का स्वरूप बहुआयामी हो, अर्थात् अन्य विषयों की पढ़ाई की भी समुचित व्यवस्था हो जिससे कि देश का प्रत्येक नागरिक स्वावलंबी बन सके।

व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास का उद्देश्य

आचार्य नरेन्द्र जी का विचार था कि शिक्षा प्रत्येक व्यक्ति को जीवन जीने की कला सिखाती है, मानवता का मार्ग प्रशस्त करती है और हर एक व्यक्ति के अन्दर निहित आंतरिक शक्तियों को जगाकर उसके सर्वांगीण विकास की दिशा तय करती है। अत: उनका विचार था– ''नयी शिक्षा पद्धति ऐसी हो कि जिसमें विचारों और भावों की एकता परिपुष्ट हो ताकि मन, बुद्धि और हृदय की एकता साधित हो।'' उनकी राय में शिक्षा का सच्चा ध्येय ऐसे व्यक्तित्व का निर्माण एवं विकास करना है, जिसमें ज्ञान, सहज प्रवृत्तियां और भाव एकभूत होकर एक संपूर्ण जीवन बने। आचार्य जी ज्ञान और कर्म के समन्वय पर विश्वास रखते थे। इस प्रकार व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास में मन, बुद्धि और आत्मा की एकता स्थापित कर शिक्षा के वास्तविक लक्ष्य को प्रतिबिम्बित करने का प्रयास किया।

विभिन्न स्तरों के लिए शिक्षा के निर्धारित उद्देश्य

आचार्य जी ने प्राथमिक, माध्यमिक व विश्वविद्यालयी शिक्षा के लिए भी कुछ विशिष्ट उद्देश्य निर्धारित किये हैं।

प्राथमिक एवं अनिवार्य शिक्षा

आचार्य जी चाहते थे कि कम से कम आठ वर्ष तक प्रत्येक बच्चे के लिए अनिवार्य

नि:शुल्क शिक्षा का प्रबंध हो। ''बच्चों के चरित्र निर्माण और गठन, उनकी बुद्धि का विकास, उनमें सभ्य जीवन की मौलिक प्रेरणाओं को जागृत करना, उन्हें जीवन के क्रियाकलापों में सक्रिय भाग लेने के लिए योग्य बनाना एवं एक सामान्य नागरिकता का विकास करना तथा सांस्कृतिक शिक्षा को सर्वसाधारण को सुलभ करा देना ही अनिवार्य शिक्षा का मूल उद्देश्य है।''

लोकतांत्रिक समाज की अनिवार्य शिक्षा व्यवस्था में नागरिक को आचार्य जी ने महत्वपूर्ण स्थान दिया है। उनका कहना था कि नागरिकता के उत्तरदायित्व को समुचित ढंग से वहन करने के लिए नागरिक जीवन के सिद्धांतों और स्थिति का ज्ञान परम आवश्यक है। इसलिए आचार्य जी ने सन् 1938 में संयुक्त प्रांत की 'प्रारंभिक और माध्यमिक शिक्षा संगठन कमेटी के अध्यक्ष की हैसियत से अनिवार्य शिक्षा के अंतिम वर्षों के लिए नागरिक शिक्षा का एक पाठ्यक्रम तैयार किया था, जिसके द्वारा बच्चों को देश की सामाजिक आर्थिक और राजनीतिक परिस्थितियों के साथ-साथ समाज, नागरिक जीवन, राष्ट्रीयता, जनतंत्र के मूल सिद्धांतों का परिचय और नागरिक के अधिकारों और कर्त्तव्यों का ज्ञान प्राप्त हो सकता था।

आचार्य जी इस अनिवार्य शिक्षा के जमाने में प्रत्येक विद्यार्थी को अपनी रुचि के अनुकूल अनिवार्यत: किसी न किसी कला-कौशल की शिक्षा के पक्षधर थे। प्रो. मुकुट बिहारी जी लिखते हैं– वे जानते थे कि कला-कौशल को माध्यम बनाकर दूसरे विषयों की शिक्षा देना कठिन है पर उनके विचार में सिद्धांतत: इस प्रकार की शिक्षा पद्धति प्रचलित शिक्षा पद्धति से अधिक सही और लाभप्रद भी सिद्ध हो सकती है।''

माध्यमिक शिक्षा के उद्देश्य

माध्यमिक शिक्षा के संबंध में आचार्य जी का विचार पूर्णत: स्पष्ट एवं सृजनात्मक था। वे माध्यमिक शिक्षा में भी मौलिक परिवर्तन आवश्यक समझते थे। उनके विचार में माध्यमिक शिक्षा ऐसी होनी चाहिए कि जिसे प्राप्त विद्यार्थी जीवनोपार्जन के लिए किसी पेशे को अपना सकें और नैतिक जीवन एवं राष्ट्रीय एकता स्थापित करने में सहायक हों। उनकी राय थी कि– ''माध्यमिक शिक्षा से संबंधित विषयों का पाठ्यक्रम तैयार करते समय देश की स्थिति और आवश्यकताओं तथा ज्ञान की उपयोगिता पर विशेष ध्यान दिया जाए, अर्थात् आवश्यक सैद्धांतिक विस्तार के बजाय वास्तविकता से संबंधित व्यावहारिक बातों का उसमें अधिक समावेश हो, और विद्यार्थियों को स्वत: अधिक काम करना पड़े ताकि विद्यार्थियों की अपनी क्षमता का विकास हो और वे आत्मनिर्भर हो सकें।''

आचार्य जी चाहते थे कि ''माध्यमिक शिक्षा के जमाने में इस प्रकार का पाठ्येत्तर प्रयासों का भी आयोजन हो जिसके द्वारा विद्यार्थी लोकतांत्रिक नेतृत्व की शिक्षा प्राप्त कर सकें, उन्हें सामाजिक कार्यों में भाग लेने का तथा समूह के हित को प्राथमिकता देने का अभ्यास हो और उनमें सद्व्यवहार, आत्मसंयम और आत्मनिर्भरता आदि सद्गुणों का विकास हो। इस प्रकार वे सद्गुणों से संपन्न व्यक्तित्व का निर्माण माध्यमिक शिक्षा के पाठ्यक्रमों के माध्यम से करना चाहते थे ताकि इस स्तर पर प्राप्त शिक्षा अपने उद्देश्यों की प्राप्ति में सफलीभूत हो सके और देश काल एवं परिस्थितियों का सकारात्मक विकास हो।

विश्वविद्यालयी शिक्षा का उद्देश्य

विश्वविद्यालयी शिक्षा के संदर्भ में आचार्य जी का कहना था कि हम समाज कल्याण-राज्य स्थापित करने का दावा रखते हैं, किन्तु इस ध्येय को प्राप्त करने क लिए देश की सामाजिक सेवाओं का निरंतर विस्तार आवश्यक है। इस कार्य को संपन्न करने के लिए सरकार को अधिकाधिक संख्या में अध्यापकों, डाक्टरों, इंजीनियरों, यांत्रिकों तथा छोटे-बड़े अन्य कार्यों को संपन्न करने के लिए सुशिक्षित व्यक्तियों की सेवाओं की आवश्यकता पड़ती है इसके लिए विश्वविद्यालयी शिक्षा की तथा वैज्ञानिक एवं यांत्रिकी शिक्षा की सुविधाओं का निरंतर विस्तार हो और अनुसंधान के कार्यों में प्रगति हो। आचार्य जी का कहना था– ''जनहित की हमारी सभी योजनाएं तथा कार्यक्रम तब तक नहीं सफल हो सकते जब तक कि राष्ट्रीय जीवन से विभिन्न क्षेत्रों में सुशिक्षित और कुशल व्यक्तियों का एक बड़ा दल तैयार नहीं हो जाता। राष्ट्र की इन आवश्यकताओं की पूर्ति विश्वविद्यालय तथा टेक्नोलॉजिकल इन्स्टीट्यूट ही कर सकते हैं।'' उनका विचार था कि राष्ट्रीय संस्कृति की रक्षा विश्वविद्यालय के द्वारा ही हो सकती है, क्योंकि वे मानवीय भावनाओं से अनुप्राणित, राष्ट्रीयता और लोकतंत्र पर पूर्ण विश्वास रखने वाले उच्च स्तरीय नेतृत्व की देन भी विश्वविद्यालयों का कर्तव्य समझते थे। उन्हें आशा थी कि विश्वविद्यालय 'विचार एवं मानव संबंधों के क्षेत्र में नेतृत्व करने वाले व्यक्तियों' को जन्म देंगे। विश्वविद्यालय में रचनात्मक विचारों के ऐसे केन्द्र बनेंगे, जिनके द्वारा ही आज के कष्ट और संघर्ष के युग में नवीन सामंजस्य की स्थापना में हमें सहायता मिल सकती है। आचार्य जी का विचार था- ''एक सामान्य नागरिक का विकास करना एक सामान्य सांस्कृतिक की शिक्षा को सर्वसाधारण के लिए सुलभ कर देना सर्वसाधारण की शिक्षा का उद्देश्य होना चाहिए, किन्तु बिना उच्च शिक्षा का उचित विधान किये राष्ट्रीय जीवन के विभिन्न क्षेत्रों के लिए विशेषज्ञ नहीं मिल सकते।''

आज विश्वविद्यालय उचित शिक्षा की व्यवस्था कर समाज की सबसे बड़ी सेवा कर कसते हैं, और प्रतिक्रियावादी शक्तियों से संघर्ष करने में नवयुवकों की सहायता कर सकते हैं और उन्हें गुमराह होने से बचाकर विवेक और बुद्धिमानी का मार्ग दिखाकार देश की समुन्नति का मार्ग प्रशस्त कर सकते हैं। आचार्य जी का कहना था कि– ''विश्वविद्यालयों में सामान्य शिक्षा के पाठ्यक्रम की व्यवस्था होनी चाहिए जैसा कि संयुक्त राज्य अमेरिका के कुछ विश्वविद्यालयों तथा कालेजों में हुआ है। विश्वविद्यालय के प्रत्येक विद्यार्थी को चाहे वह किसी भी विभाग का हो, अपने देश की विधान की रूप-रेखा, भूतकालीन इतिहास तथा आधुनिक विचारधारा का भी कुछ ज्ञान होना चाहिए और अपने लिए एक सामाजिक दर्शन बनाने की कोशिश करना चाहिए। प्रत्येक विद्यार्थियों को वैज्ञानिक पद्धति का अभ्यास करना चाहिए और उसकी विचार प्रक्रिया तर्कपूर्ण होनी चाहिए।''

आचार्य नरेन्द्र देव जी विश्वविद्यालयों में इस प्रकार की उच्च शिक्षा की व्यवस्था करना चाहते थे कि जिससे समाज को विभिन्न क्षेत्रों के लिए ऐसे विशेषज्ञ उपलब्ध हो सकें जो समाज का सर्वांगीण निर्माण कर सकें। इसप्रकार शिक्षा के उद्देश्यों की विवेचना करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि आचार्य जी शिक्षा के माध्यम से व्यक्ति में बहुमुखी विकास करना शिक्षा का परम उद्देश्य मानते थे। वे चाहते थे कि हमारी शिक्षा व्यवस्था ऐसी हो कि हम संपूर्ण मानव तो बन ही सके, साथ ही साथ लोकतांत्रिक भावना से ओत-प्रोत हों ताकि मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा हो सके। हर व्यक्ति में विवेचनात्मक शक्ति का विकास हो और वह स्वावलंबी होकर सुखपूर्वक जीवन बिता सकें। यदि ऐसी व्यवस्था एवं विकास के सोपानों को फलीभूत करने में हम सक्षम हैं तो ही शिक्षा अपने वांछित उद्देश्यों को पूरा कर सकती है और छात्रों के सर्वांगीण विकास का मार्ग मिल सकता है। अत: आचार्य जी की दृष्टि में शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति का चहुंमुखी विकास एवं मानवीय मूल्यों की रक्षा एवं सकारात्मक शैक्षिक परिवेश का सृजन करना है।

पाठ्यक्रम

शैक्षिक उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु तद्नुरूप पाठ्यक्रम की व्यवस्था करनी पड़ती है। सन् 1939 में शिक्षा पद्धति के पुनर्गठन के संबंध में आचार्य नरेन्द्र देव की अध्यक्षता में प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा के क्षेत्रों में बहुत व्यापक ढंग से शिक्षा सुधार समिति ने अपनी रिपोर्ट तैयार की। पाठ्यक्रम के संबंध में आचार्य नरेन्द्र कमेटी ने निम्नलिखित सुझाव दिये–

1. बेसिक प्राइमरी स्कूलों के लिए निर्धारित पाठ्यक्रम में निम्नलिखित विषयों को शामिल करने की बात कही गयी–
   (अ) बुनियादी शिल्प
   (ब) हिन्दुस्तानी अर्थात् हिन्दी, उनके लिए जिनकी भाषा नहीं है।
   (स) गणित व नेचुरल साइंस।
   (द) सामान्य विज्ञान।
2. कक्षा 5, 6 और 7 के लिए निर्धारित पाठ्यक्रम के संबंध में समिति का सुझाव था–
   (अ) बुनियादी शिल्प
   (ब) हिन्दुस्तानी भाषा एवं साहित्य
   (स) द्वितीय लिपि
   (द) गणित (अंकगणित, प्रारंभिक बीजगणित, ज्यामिति, मेंसुरेशन)
   (य) कामर्स
   (र) सामान्य विज्ञान जिसमें शरीर विज्ञान और स्वास्थ्य तथा सफाई भी हो।
   (ल) कला जिसमें ड्राइंग भी हो।
   (व) शारीरिक व्यायाम
   (श) सामाजिक अध्ययन
3. पाठ्यक्रम को वास्तविक व प्रयोगात्मक होना चाहिए, इसके लिए आवश्यक है कि देशकाल की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए किया जाना चाहिए। बेसिक स्कूलों में शिल्प के माध्यम से शिक्षा का आधार को स्पष्ट करते हुए आचार्य नरेन्द्र देव समिति ने प्राइमरी कक्षाओं अर्थात कक्षा 1 से कक्षा 5 तक तकली पर कताई तथा कृषि अथवा बागवानी को सभी छात्रों के लिए अनिवार्य करने की संस्तुति की। शहरी क्षेत्रों में कृषि हेतु भूमि की अनुपलब्धता की स्थिति में कृषि या बागवानी में छूट दी थी। दूसरे उद्योग के लिए निम्नलिखित उद्योगों में से कोई एक उद्योग चुनने की छूट दी गयी–
   1. कताई और बुनाई
   2. कृषि
   3. दफ्तरी का काम, लकड़ी या धातु का काम
   4. चमड़े का काम
   5. कुम्हारी जिसमें मिट्टी के नमूने और ईंट बनाना भी शामिल है।
   6. फल और सब्जियों की खेती

7. साइकिल मरम्मत, सिलाई मशीन, ग्रामोफोन तथा विद्युत सामानों आदि की मरम्मत के तकनीकी प्रशिक्षण
8. टोकरी बनाना, जिसमें चटाई बनाना और बेंत का कार्य शामिल होना।
9. बालिकाओं के लिए गृह शिल्प

कमेटी की सिफारिशें किसी हद तक जरूर लागू की गयीं। प्राथमिक शिक्षा में कला-कौशल की शिक्षा अनिवार्य रूप से दी जाने लगी। माध्यमिक विद्यालयों के कुछ विषयों की शिक्षा की सामान्य पाठ्यक्रम एवं विशिष्ट पाठ्यक्रम के रूप में व्यवस्था की जाने लगी। व्यावसायिक शिक्षा को पाठ्यक्रम में महत्वपूर्ण स्थान दिया और सामाजिक विषयों के पाठ्यक्रम का स्तर ऊँचा उठ गया, इसमें नागरिक शिक्षा का भी कुछ प्रबंध किया गया।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद ही उपरोक्त सुझावों को 1948-49 में लागू कर दिया गया, परन्तु कुछ ही दिनों में शिक्षा के पुनर्व्यस्थापन की आवश्यकता सरकार को अनुभव हुई। 18 मार्च, 1951 को उत्तर प्रदेश सरकार ने आचार्य जी की अध्यक्षता में 'माध्यमिक शिक्षा पुनर्गठन समिति' का गठन किया। अध्यक्ष के नाम पर इसे 'द्वितीय आचार्य नरेन्द्र देव समिति' कहते हैं। आचार्य जी उस समय बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के कुलपति थे।

31 मार्च, 1952 को इस समिति की प्रथम बैठक का उद्घाटन तत्कालीन शिक्षा मंत्री डा. संपूर्णानंद ने किया। इस कमेटी में कृष्णदेव प्रसाद, डॉ. कंचनलाल सबरवाल, सर्वश्री राम बालक शास्त्री, बी.पी. बाजपेई, राजनाथ कुंजरू, राम बल्लभ शर्मा, कुबेरनाथ शुक्ल, वी.जी. झिंगरन, जी.एन. कपूर, आर.एन. गुप्ता, सी.एन. चाक, श्रीमती लीला महमूद, कु. टी. गोरेवाला, डा. सी.एम. भाटिया, डा. पी.एल. श्रीवास्तव, डा. एन.एम. एन्टोनी, डा. डी.पी. मुखर्जी, श्री कैलाश प्रकाश, श्री कृष्णचन्द्र, श्री राजाराम, सी. महाजन, डा. सीताराम, मो. असरार अहमद, डा. डी.आर. टींगरा, श्री के.पी.एल. भलानी, श्री हीरालाल खन्ना व उत्तर प्रदेश के गृह उद्योग के निदेशक श्री भगवती सरन सिंह। लखनऊ के शिक्षा विभाग के विशेष सेवा अधिकारी कमेटी के सचिव थे।

इस कमेटी ने 14 महीने तक अध्ययन के बाद सन् 1953 में सरकार को अपनी रिपोर्ट दी। पाठ्यक्रम के संबंध में द्वितीय आचर्य नरेन्द्र देव समिति ने निम्नलिखित सिफारिशें की :

(1) माध्यमिक शिक्षा के चारों वर्षों (कक्षा 9-12) के लिए हिन्दी संस्कृत के साथ अनिवार्य विषय होना चाहिए। हिन्दी के दो पेपर होने चाहिए और दोनों के लिए 25-25 अंक निर्धारित हो, साथ ही साथ तृतीय प्रश्नपत्र अनिवार्य संस्कृत के लिए

30 अंक होने चाहिए। साथ ही हिन्दी व संस्कृत दोनों में अलग-अलग न्यूनतम अंक उत्तीर्ण होने के लिए आवश्यक है।

(2) हिन्दी और एक विदेशी भाषा के अतिरिक्त शिक्षा के सेकेण्डरी स्तर पर कोई आधुनिक भारतीय भाषा भी होनी चाहिए।

(3) सामान्य अंग्रेजी भाषा को पाठ्यक्रम से हटा देना चाहिए।

(4) कक्षा 9 व 10 के लिए गणित एक अनिवार्य विषय होना चाहिए तथा कक्षा 11 व 12 में यह ऐच्छिक विषय होना चाहिए।

लड़कियों के लिए गणित कक्षा 9 से लेकर कक्षा 12 तक ऐच्छिक विषय होना चाहिए। साथ ही साथ गृहविज्ञान के कक्षा 9, 10, 11, 12 चारों में छात्राओं के लिए अनिवार्य होना चाहिए। लेकिन लड़कों को गृह विज्ञान विषय लेने की अनुमति नहीं देनी चाहिए।

(5) कक्षा 9 और 10 में छः विषय पढ़ाये जाने चाहिए तथा कक्षा 11 व 12 में 5 विषय होने चाहिए। यदि छात्र चाहें तो कोई अन्य अतिरिक्त विषय ले सकता है।

(6) विषयों को दो भाग मुख्य एवं सहायक में बाँटा जाये।

(7) ऐच्छिक विषयों का चयन करने में छात्र विशेष की अभियोग्यता पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए।

(8) शिक्षा की सहसंबंधित स्कीम को प्राप्त करने के लिए बेसिक प्राइमरी व जूनियर हाईस्कूल के पाठ्यक्रम में परिवर्तन करना चाहिए।

(9) व्यावसायिक कृषि, निर्माणकारी व वैज्ञानिक समूह की शिक्षा को मान्यता देते समय क्षेत्र विशेष की आवश्यकताओं को भी ध्यान में रखना चाहिए।

इस तरह निष्कर्षतः देखा जाये तो स्पष्ट है कि आचार्य जी ने हिन्दी व संस्कृति को पाठ्यक्रम में मुख्य व अनिवार्य स्थान दिया है। गृह विज्ञान की पढ़ाई छात्राओं के लिए अनिवार्य मानते हुए उसे भी पाठ्यक्रम में स्थान दिया। गणित, कामर्स व नेचुरल आर्ट आदि की तथा व्यावसायिक शिक्षा, कृषि शिक्षा सबको पाठ्यक्रम में रखा।

सन् 1953 में द्वितीय आचार्य नरेन्द्र देव समिति ने कृषि के महत्व पर बल दिया जो पुनर्व्यवस्था योजना में प्रतिबिम्बित हुआ। आचार्य जी जीवन के लिए आजीविका जरूरी समझते थे और अर्थकरी विद्या को महत्व देते थे। वे अर्थकरी विद्या को समाजहित के आधार पर पाठ्यक्रम में समाहित करना चाहते थे। अर्थात् पाठ्यक्रम में उन शैक्षणिक बिन्दुओं को शामिल करना चाहते थे जो व्यक्ति को केवल शिक्षित ही न करे अपितु उसे

पूर्ण नागरिक बना सके, ताकि वह बदलते हुए सामाजिक, आर्थिक नैतिक व सांस्कृतिक परिस्थितियों में अपने आप को समायोजित कर सके।

औद्योगिक एवं तकनीकी शिक्षा

आचार्य जी औद्योगिक और तकनीकी शिक्षा को भी नये युग के निर्माण में आवश्यक समझते थे। उनका कहना था कि जब तक हम बदलते हुए परिवेश के अनुसार शिक्षण गतिविधियों का संचालन नहीं करेंगे तब तक राष्ट्र का चतुर्दिश विकास संभव नहीं है। आज समाज में विकास की चर्चा प्राय: होती रहती है परन्तु विकास की गाड़ी को आगे बढ़ाने एवं प्रत्येक छोटे-बड़े कार्यों को संपादित करने हेतु सुरक्षित व तकनीकी शिक्षा की आवश्यकता पड़ती है। इस संबंध में आचार्य जी का कहना है– जनहित की हमारी सारी योजनाएं तथा निर्माण कार्य तब तक सफल नहीं हो सकते जब तक कि राष्ट्रीय जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में सुशिक्षित और कुशल व्यक्तियों का एक बड़ा दल तैयार नहीं हो जाता। राष्ट्र की इस आवश्यकता की पूर्ति विश्वविद्यालय तथा टेक्नोलॉजिकल इन्स्टीट्यूट ही कर सकते हैं।

आचार्य जी ने तकनीकी शिक्षा के बहुत जोर दिया तथा इसके लिए उन्होंने एक विशेष प्रकार के पाठ्यक्रम के संगठन व पृथक विद्यालय खोलने का भी सुझाव दिया। वे इस तथ्य से सुपरिचित थे कि बिना औद्योगिक एवं तकनीकी शिक्षा के हमारे देश की जनता का कल्याण संभव नहीं है। उनका कहना था कि– ''सरकार कल्याण राज्य स्थापित करने का दावा करती है, किन्तु ध्येय को प्राप्त करने के लिए देश की सामाजिक सेवाओं का निरन्तर विस्तार आवश्यक है। इस कार्य को संपन्न करने के लिए सरकार को काफी संख्या में अध्यापकों, डाक्टरों, इंजीनियरों, यंत्र चालकों तथा छोटे-बड़े कार्यों को करने के लिए सुशिक्षित व्यक्तियों की आवश्यकता पड़ेगी। इसका यह अर्थ होता है कि विश्वविद्यालयों की शिक्षा का, वैज्ञानिक और यान्त्रिक शिक्षा की सुविधाओं का निरंतर प्रसार और वैज्ञानिक अनुसंधान में प्रगति होनी चाहिए।

उत्तर प्रदेश में इस तकनीकी शिक्षा की आवश्यकता को देखते हुए द्वितीय आचार्य नरेन्द्र देव कमेटी (1953) ने इस संबंध में निम्न महत्वपूर्ण सुझाव दिये–

(1) औद्योगिक एवं तकनीकी शिक्षा का संचालन संबंधित विभाग द्वारा संचालित होनी चाहिए।

(2) औद्योगिक एवं तकनीकी शिक्षा नि:शुल्क हो।

(3) छात्रों को औद्योगिक एवं तकनीकी क्षेत्र में उत्पादन कार्य के पारिश्रमिक दिया जाये।

(4) वर्तमान औद्योगिक एवं तकनीकी शिक्षा में जिन विद्यालयों में संचालित हो रही है उनकी दशा में सुधार किया जाये, उन्हें साधन संपन्न किया जाये।
(5) कुछ वर्तमान जूनियर तकनीकी विद्यालयों को पॉलिटेकनिक विद्यालयों में बदला जाये।
(6) प्रत्येक जिलों में कम से कम पॉलिटेकनिक विद्यालय होना चाहिए।
(7) जहाँ आवश्यक हो वहाँ नये तकनीकी विद्यालय खोले जाएं।
(8) महिलाओं के लिए अलग तकनीकी विद्यालय खोले जाएं, जहां इस तरह व्यवस्था न हो वहाँ महिला छात्राओं के लिए अलग छात्रावास बनाए जाएं।
(9) तकनीकी विद्यालयों के पाठ्यक्रमों का नवीनीकरण होना चाहिए।
(10) जूनियर टेक्निकल स्तर पर हिन्दी, भौतिक विज्ञान और रसायन विज्ञान अनिवार्य रूप से पढ़ाएं जाएं।
(11) तकनीकी शिक्षा को उत्तीर्ण करने वाले छात्रों को फैक्ट्रियों में व्यावहारिक प्रशिक्षण की सुविधा उपलब्ध होनी चाहिएं।
(12) तकनीकी शिक्षा से जुड़े हुए अध्यापकों के प्रशिक्षण की सुविधा की जाय।
(13) लड़कियों के लिए अलग से बनाये गये तकनीकी स्कूलों में लड़कियों के रूझान के अनुसार विषय सिखाए जाएं, जैसे- पुस्तक कला, सिलाई-कढ़ाई, लान्ड्री वर्क, नीडिल वर्क, छपाई, व्यवहारिक अर्थशास्त्र एवं फल संरक्षण आदि।

धार्मिक एवं नैतिक शिक्षा

संसार के विभिन्न धर्मों का वैज्ञानिक अध्ययन, उनके संकीर्ण अनुष्ठानों और व्यापक उदारतत्त्वों के मौलिक भेद का समुचित ज्ञान तथा इतिहास की पृष्ठभूमि में उनकी क्रिया-प्रतिक्रिया की जानकारी आचार्य जी मानव गतिविधि के समुचित ज्ञान के लिए आवश्यक समझते थे। आचार्य जी ने आकाशवाणी द्वारा प्रसारित एक वार्ता में यह स्वीकार किया है कि- ''संकुचित साम्प्रदायिक भावनाओं और कृतियों से प्रभावित होते हुए भी विशाल हिन्दू धर्म कुछ विशिष्ट उदार धार्मिक भावनाओं और मान्यताओं से अनुप्राणित है जिसके कारण वह किसी एक को पैगम्बर या गुरु नहीं मानता और स्वीकार करता है। लोगों की रूचि भिन्न-भिन्न होती है और विभिन्न मार्गों पर चलकर एक लक्ष्य पर पहुँचा जा सकता है।

आचार्य जी 'निष्काम कर्म' तथा वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावनाओं को एवं बौद्धकाल की 'अप्रतिष्ठित निर्वाण कल्पना' को जो साधक को अपनी वैयक्तिक मोक्ष

की उपेक्षा करते हुए दु:ख से आहत जीवों की सेवा करने के लिए प्रेरित करती है, जनकल्याणकारी समझते थे। पर साथ ही आचार्य जी यह भी मानते थे– ''जब धर्म में जड़ता आ जाती है और उसका विकास रूक जाता है, तब धर्म पर आश्रित समाज भी जड़ और निश्चेष्ट हो जाता है।'' यद्यपि प्राचीनकाल में धार्मिक शिक्षा बच्चों की शिक्षा का एक अनिवार्य अंग माना जाता था, लेकिन ब्रिटिश शासनकाल में ईस्ट इंडिया कंपनी ने धार्मिक शिक्षा को शिक्षा से अलग करके अंग्रेजी शिक्षा व पाश्चात्य विज्ञान की शिक्षा देना प्रारंभ कर दिया। आचार्य जी ने कहा– ''सार्वजनिक विद्यालयों में धार्मिक शिक्षा देने की कोई व्यवस्था नहीं की जा सकती थी, क्योंकि विभिन्न धर्म संप्रदायों के लड़के इन विद्यालयों में पढ़ने आते थे। अत: इन कठिनाइयों के कारण विदेशी सरकार ने सार्वजनिक विद्यालयों में केवल धर्म-निरपेक्ष शिक्षा की ही व्यवस्था की थी।

आचार्य जी प्राचीन भारतीय संस्कृति के सर्वथा परित्याग की भावना तथा उनके पुनर्जीवन के आंदोलन का विरोध करते हुए एक ऐसी नवीन सभ्यता एवं संस्कृति का निर्माण करना चाहते थे जिसका रूप रंग देशी हो, जिसमें नवीन अंशों का भी समावेश हो जो आज जगत में प्रगतिशील है और संसार में नवीन आदर्श उपस्थित करना चाहती है

1953 ई. की आचार्य नरेन्द्र देव कमेटी की संस्तुतियों को प्रस्तुत करते हुए धार्मिक व नैतिक शिक्षा के संबंध में समिति द्वारा निम्नांकित सुझाव दिये गये:

(1) विद्यालयों की शिक्षा में धार्मिक व नैतिक शिक्षा को महत्व दिया जाय।
(2) प्रत्येक विद्यालय के कार्यदिवस की शुरूआत प्रार्थना से शुरु हो।
(3) विद्यालयों में समय-समय पर धार्मिक एवं नैतिक विषयों पर वार्तालाप कराये जाएं।
(4) विद्यालयों में विभिन्न मुख्य धर्मों से संबंधित धर्माचार्यों एवं विद्वानों की जीवनियां पढाई जाएं।
(5) विद्यालय में सभी धर्मों की अच्छी मानी जाने वाले शिक्षाएं दी जाएं।

आचार्य जी सभी धर्मों के प्रेरणाप्रद तथ्यों को ग्रहण करने की बात तो करते हैं, परन्तु सर्वधर्म समन्वय की शिक्षा उपयुक्त नहीं है ऐसा भी उनका विचार था। इस संदर्भ में चर्चा करते हुए आकाशवाणी वार्ता में उन्होंने कहा–

''पशिचमी संस्कृत के संपर्क में आ जाने के फलस्वरूप हिन्दी तथा इस्लाम धर्मों की शुद्धि हेतु देश में अनेक सुधारवादी आन्दोलनों का जन्म हुआ जो धर्मों के बिगड़ते

हुए रूप को पुनः मौलिक स्तर प्रदान करना चाहते थे पर इसका परिणाम यह हुआ कि भारत के सभी वर्ग जो एक सूत्र में आबद्ध थे, छिन्न-भिन्न होने लगे। शनैः-शनैः एक दूसरे का अंतर बढ़ता गया और कुछ दिनों पश्चात् एक दूसरे के उत्सवों में भाग लेना लोगों ने बंद कर दिया। साम्प्रदायिक वैमनस्य बढ़ने लगा। इस वैमनस्य को शांत करने के लिए कतिपय विचारकों एवं नेताओं ने धर्म के सर्वव्यापी महत्त्व को तसलीम करते हुए सर्वधर्म-समन्वय का कार्य प्रारंभ किया। इस प्रक्रिया से भी देश की सांप्रदायिक समस्या हल नहीं हो सकी। वैमनस्य और अशान्ति बढ़ती ही गयी। आचार्य नरेन्द्र देव प्रभृति विचारक स्वभावतः इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि इस युग में सर्वधर्म-समन्वय द्वारा साम्प्रदायिक समस्या का हल होना असंभव है।

इस विषय के संदर्भ में आचार्य जी की धारणा थी कि अग लोग धर्म के प्रति आस्था और विश्वास रखना चाहते हैं तो यह पूर्णतः धर्मनिरपेक्ष होना चाहिए न कि उसमें उन्माद होना चाहिए। उनका कहना था कि धार्मिक व नैतिक शिक्षा का स्वरूप इस प्रकार होना चाहिए कि वह मानवता का सृजन करे तथा मानवीय मूल्यों की उदात्त भावना से परिचित कराये। उनकी दृष्टि में सभी धर्म मूलतः एक है। हमें अपने नैतिक व चारित्रिक दायित्वों का निर्वहन संकल्पित ढग से करना चाहिए तभी जाकर ''वसुधैव कुटुम्बकम्' जो भारतीय दर्शन की पराकाष्ठा है, वह साकार होगी।

शिक्षा का माध्यम

भिन्न-भिन्न स्तर पर शिक्षा का माध्यम क्या हो, इस संबंध में भी आचार्य जी के विचार सामने आते हैं। इस संदर्भ में मुकुट बिहारी जी लिखते हैं– ''आचार्य नरेन्द्र देव जी प्रादेशिक मातृ-भाषा को प्रारंभिक और माध्यमिक शिक्षा का माध्यम बनाना चाहते थे। पर वे राष्ट्रभाषा हिन्दी को विश्वविद्यालयों में शिक्षा का माध्यम बनाये जाने के पक्ष में थे।

आचार्य जी का यह मानना था कि अपनी-अपनी मातृभाषा में शिक्षा ग्रहण करना सरल एवं सुविधाजनक होता है। यही कारण है कि उन्होंने प्राथमिक तथा माध्यमिक स्तर पर शिक्षा का माध्यम मातृभाषा को ही अच्छा माना। लेकिन विश्वविद्यालय स्तर पर राष्ट्रभाषा हिन्ही को ही शिक्षा का माध्यम बनाये जाने के पक्ष में थे। वे यह मानते थे कि विदेशी भाषा की आवश्यकता बहुत दिनों तक बनी रहेगी पर उनके विचार में यह शिक्षा का माध्यम कदापि नहीं हो सकती। आचार्य जी की धारणा थी कि- ''जब तक हम विभिन्न प्रदेशों के सांस्कृतिक संबंध को दृढ़ नही बनाते और बड़ी संख्या में ऐसे लोग तैयार नहीं करते जो एक सामान्य भाषा में अपने सर्वोत्कृष्ट विचारों को व्यक्त कर सकें तब तक राष्ट्रीय एकता स्थापित नहीं हो सकती। आचार्य जी मानते थे कि अगर हम

प्रत्येक विश्वविद्यालय में आधुनिक भारतीय भाषाओं की शिक्षा की व्यवस्था कर दें और विश्वविद्यालयों में राष्ट्रभाषा को शिक्षा का माध्यम बना दें तो यह उद्देश्य सफल हो सकता है। उनका कहना था– विश्वविद्यायल में शिक्षा का माध्यम राष्ट्रभाषा होना चाहिए। प्रादेशिक भाषा के पक्ष में निर्णय से शिक्षा में संकीर्णता को निश्चित रूप से प्रोत्साहन मिलेगा। अन्तर विश्वविद्यालय बोर्ड समान शिक्षा स्तर की आवश्यकता पर जोर दे रहा है ताकि एक विश्वविद्यालय से दूसरे विश्वविद्यालय में विद्यार्थियों का आवागमन सुगम हो सके।

राष्ट्रीय एकता को सुदृढ़ करने के लिए आचार्य जी यह चाहते थे कि दक्षिण भारत की एक भाषा का अध्ययन उत्तर भारत के विश्वविद्यालय में अनिवार्य कर दिया जाय। आचार्य जी कम-से-कम विश्वविद्यालय स्तर पर एक विदेशी भाषा का ज्ञान भी आवश्यक समझते थे। उनका कहना था– ''अंग्रेजी द्वारा हमको यूरोपीय ज्ञान अब तक मिलता रहा है, पर स्वतंत्र होने के बाद हमारा संबंध प्रत्यक्ष रूप से सभी राष्ट्रों से हो गया है। ऐसी अवस्था में संसार की विविध भाषाओं की व्यवस्था हमको अपने देश में ही करनी चाहिए।'' आचार्य आधुनिक भाषाओं को भी शिक्षा का माध्यम बनाना चाहते थे ताकि बदलते हुए सामाजिक एवं व्यावहारिक परिवेश में विभिन्न प्रदेशों से पारस्परिक संबंध बना रहे।

आचार्य जी का मानना था कि- शिक्षा का माध्यम राष्ट्रभाषा ही हो, राष्ट्रभाषा अपने समुचित स्तर पर तभी स्थापित हो सकेगी और राष्ट्रीय महासभा एवं अन्य राष्ट्रीय सभाओं में विचार-विमर्श का समुचित माध्यम तभी बन सकेगी, जब उसे सभी विश्वविद्यालयों में शिक्षा का माध्यम बना दिया जाएगा। जब राष्ट्रीय कार्य राष्ट्रभाषा के द्वारा होने लगता है तभी राष्ट्र के भाव और आदर्श सब एक जीवन बनते हैं।

इस प्रकार स्पष्ट है आचार्य जी राष्ट्रीय स्तर पर विश्वविद्यालयी शिक्षा का माध्यम राष्ट्रभाषा को ही मानते थे क्योंकि ऐसा करने पर राष्ट्रीय एकता की भावना विकसित करने तथा राष्ट्रभाषा को उच्चतर शिक्षा के माध्यम के रूप में स्वीकार कर लेने पर सारे देश के लिए विचार करने और उसे व्यक्त करने का माध्यम मिल जाता है। पारस्परिक सहानुभूति और सद्भावना विकसित करने में राष्ट्रभाषा सेतु का काम करती है। यही कारण था कि आचार्य जी उच्च स्तर पर राष्ट्रभाषा को शिक्षा का माध्यम बनाने पर जोर दिया।

शिक्षण विधि

शिक्षण विधि पर आचार्य जी ने अलग से कुछ नहीं लिखा है। किसी विशेष विधि की ओर उनका झुकाव नहीं था। आचार्य जी ने मुख्य रूप से तीन विधियों का नाम यत्र-तत्र

अपने भाषण वार्ता व लेख आदि में लिया है:

1. प्रसार व्याख्यान
2. ट्यूटोरियल पद्धति
3. वैज्ञानिक पद्धति

आचार्य जी ने छात्रों को अतिरिक्त विषयों, जैसे इतिहास एवं आधुनिक विषय के संदर्भ में जानकारी आदि देने के लिए प्रसार विज्ञान की बात कही है। ट्यूटोरियल पद्धति के विषय में भी आचाार्य जी ने कहा है कि यह पद्धति महंगी है और इसका विस्तार धनाभाव के कारण कठिन भी है। लेकिन अध्यापक और विद्यार्थी को जो परस्पर का संबंध खत्म हो रहा है इसके द्वारा उसमें कमी आएगी।

''परस्पर का संपर्क बढ़ाने के लिए ट्यूटोरियल पद्धति का विस्तार एक अच्छा उपाय है। इस पद्धति का लाभ तभी उठाया जा सकता है जब विद्यार्थी इसको अपने कालेज के जीवन का केन्द्र समझें।'' आचार्य जी ने इस पद्धति को उपयुक्त माना है। उनका मानना है कि इससे विद्यार्थियों को अवश्य लाभ होता है। तभी तो उन्होंने कहा– ''ट्यूटोरियल पद्धति को सुसंगठित करने से यह अधिक लाभदायक हो जाएगा। इसमें संदेह नहीं कि यह खर्चीली व्यवस्था है, किन्तु अगर हम अपने विद्यार्थियों का समुचित बौद्धिक विकास करना चाहते हैं तो इस अतिरिक्त व्यय की परवाह नहीं करनी चाहिए।''

वैज्ञानिक पद्धति को भी आचार्य जी ने स्थान दिया है क्योंकि उनके विचार से यह पद्धति तर्कपूर्ण होती है। उन्होंने स्थान-स्थान पर वैज्ञानिकता को अपनाने एवं उसको प्रोत्साहन देने की बात कही है।

अध्यापक

शिक्षा का सच्चा ध्येय ऐसे व्यक्तित्व के निर्माण एवं विकास में सहायता पहुंचाना है जिसमें ज्ञान, सहज प्रवृत्तियां और भाव एकीभूत होकर एक संपूर्ण जीवन बने। साथ ही इस पूर्ण विकसित व्यक्तित्व के लिए यह आवश्कय है कि सामाजिक जीवन के साथ घनिष्ठ संबंध स्थापित हो। समाज का अंग होकर ही व्यक्ति अपनी पूर्णता प्राप्त कर सकता है। आचार्य जी कहना था– ''अध्यापक वर्ग नये संसार में बहुत महत्वपूर्ण कर्त्तव्य पालन करना पड़ता हैं। अब वे जनता के जीवन से पृथक नहीं रह सकते । उन्हें समाज की बौद्धिक एवं व्यावहारिक समस्याओं के संबंध में सतर्क और सचेष्ट रहना होगा।''

पुरातन काल मे शिक्षा देने का कार्य ब्राह्मण ही करते थे। छात्र गुरुकुल में जाकर शिक्षा ग्रहण करते थे फिर नये-नये धर्मों, विभिन्न शासकों के आने पर बौद्ध भिक्षु, पादरी, मौलवी आदि पर शिक्षा का भार आया। समाज में इनका बहुत ही उच्च स्थान प्राप्त था। केवल भोजन एवं वस्त्र लेकर ही यह समाज की शिक्षा की व्यवस्था करते थे और समाज इनको बहुत ही आदर देता था। लेकिन कालांतर में यह भाव धीरे-धीरे कम होने लगा। अधिकाधिक लोग रुपए के पीछे अन्धे हो चुके हैं। अध्यापकों की मान प्रतिष्ठा से किसी को भी कुछ लेना-देना नहीं है। स्वार्थों के वसीभूत होकर व्यक्ति अपनी वास्तविक पहचान खोता जा रहा है। इन्हीं बातों को ध्यान में रखकर आचार्य नरेन्द्र देव जी का कहना था– ''प्रबंधकों को यह बात अच्छी तौर पर समझ लेना चाहिए कि अध्यापक ही विद्यालय के प्राण हैं, उनकी योग्यता और क्षमता ही विद्यालय की प्रतिष्ठा और उपयोगिता के मूल आधार हैं।, उनके उत्साहपूर्ण सहयोग के बिना शिक्षा का ध्येय की सिद्धि असंभव है। शिक्षकों के गौरव की रक्षा उनके व्यक्तित्व एवं विद्वता का आदर, उनके साथ निष्पक्ष व्यवहार तथा उनकी आवश्यकताओं को पूरा करके ही शिक्षा कार्य में उनका समुचित सहयोग प्राप्त किया जा सकता है।''

अध्यापक वर्ग अपने कर्त्तव्य एवं व्रत का पूर्ण परिपालन कर सकें, इसके लिए उसका स्तर उन्नत करना होगा और उनकी जीविका की ऐसी व्यवस्था करनी होगी कि आर्थिक कठिनाइयों से मुक्त होकर वह एकचित हो अपने जीवन कर्त्तव्य के पालन में लग सके। उनकी बौद्धिक एवं अध्ययनगत स्वतंत्रता अक्षुण्ण रखनी होगी और सभी प्रस्तुत विषयों पर अपने विचार प्रकट करने की स्वतंत्रता उसे देनी होगी।

आचार्य जी शिक्षा के स्तर को ऊँचा उठाने के लिए सुयोग्य शिक्षितों को शिक्षा कार्य में आकृष्ट करना आवश्यक समझते थे। उनको विद्यालयों में योग्य शिक्षकों का अभाव खटकता था। आचार्य जी का कहना था कि योग्य शिक्षकों के अभाव में शिक्षा के विस्तार की समुचित व्यवस्था नहीं की जा सकती। उनकी धारणा थी– ''अध्यापन के कार्य को आकर्षक बनाने का एक ही तरीका है उसके वेतन में समुचित वृद्धि।'' अतः शिक्षा विभाग के वेतन को दूसरे विभागों के वेतन के समान ऊँचा उठाना नितान्त आवश्यक है। उनका कहना था कि अध्यापक समाज की धुरी हैं, क्योंकि शिक्षा राष्ट्र के पुनरुज्जीवन की सभी योजनाओं का महत्वपूर्ण अंग है। अतएव सरकार एवं स्थानीय अधिकारी दोनों के लिए उचित है कि ऐसी व्यवस्था करें कि नयी योजना में अध्यापकवृन्द अपने उचित स्थान और स्तर पर आसीन हों जिससे अध्यापक अच्छे वेतन और जीवन के उत्तम उपकरणों की प्राप्ति के लिए अध्यापकवृत्ति त्याग कर अन्य न चले जाएं।

आचार्य जी अध्यापक वृन्द की बौद्धिक और अध्ययनगत स्वतंत्रता अक्षुण्य बनाये रखना भी आवश्यक समझते थे। आचार्य जी की धारणा थी कि ''एक अध्यापक तभी उपयोगी हो सकता है जब कि उसके अन्तर्गत बौद्धिक ईमानदारी हो और वह तभी संभव है जबकि उसके वैचारिक स्वतंत्रता प्राप्त हो।'' एक सच्चा अध्यापक अपने युग के विवादास्पद प्रश्नों के प्रति उदासीन नहीं रह सकता। उदासीनता का भाव उससे भी बुरी अधिकारियों के भय से अपने विचारों को छिपाने की इच्छा उसकी मर्यादा के विरूद्ध है। आचार्य जी अध्यापक को प्रचारक या मंच वक्ता बनाने के विरुद्ध थे। वे चाहते थे कि प्रबंधक व अध्यापक, दोनों विद्यार्थियों के प्रति अपने कर्तव्यों का अनुभव करें और समुचित सहयोग के साथ विद्यार्थियों की शिक्षा-दीक्षा के महत्वपूर्ण कार्य का संचालन करें। क्योंकि जब तक अध्यापक एवं छात्रों के बीच विचारों और भावनाओं का उन्मुक्त आदान-प्रदान नहीं होता तब तक ऐसे सामाजिक जीवन का विकास नहीं हो सकता जो गतिशील हो। विद्यार्थियों के मानस का निर्माण करना उनके चरित्र का विकास करना तथा उनमें जनतांत्रिक भाव भरना अध्यापक का कर्तव्य है।

आचार्य जी के विचार में जो अध्यापक विद्यार्थियों के चरित्र का निर्माण एवं व्यावहारिक कुशलता में ज्ञान-वाहन नहीं कर पाता वह एक योग्य अध्यापक नहीं कहा जा सकता। उनका कहना था- ''अध्यापक वर्ग को अपनी उदासीनता, विराग, आलस्य और निष्क्रियता का त्याग करना पड़ेगा और देश की राजनीतिक और सामाजिक समस्याओं के निदान में सक्रिय भाग लेना होगा। उसे निर्णय करना होगा कि पुरानी संस्कृति और शिक्षा-सिद्धांत का कितना अंश सुरक्षित रखना है और कितना अंश रूढ़िगत महत्व का, पर यथार्थ में निःसार होने से निकाल फेंकना है। इस क्षेत्र में सफल होने के लिए आवश्यक है कि अध्यापक वर्ग में नवीन उद्देश्यों और आदर्शों पर दृढ़ विश्वास और आस्था हो और उन्हें प्राप्त करने के लिए उत्साह के साथ दृढ़ प्रतिज्ञ होकर पूरा प्रयत्न करें।'

इस प्रकार आचार्य जी की दृष्टि में अध्यापकों का काम केवल बुद्धि-संबंधी शिक्षा देना और चरित्र के विकास में योगदान देना ही नहीं है; उन्हें अपने छात्रों में समाज के प्रति दायित्व की भावना भी पैदा करनी है। वे चाहते थे कि अध्यापक अपने शिष्यों में लोकतांत्रिक भावना, स्वतंत्रता के प्रति अनुराग, न्याय की प्यास और प्रगति का संकल्प पैदा करें, और इस संकल्प की पूर्ति के लिए 'स्वयं इन गुणों से संपन्न हों। आचार्य जी की धारणा थी कि– ''शिक्षक को सुशिक्षित तथा प्रबल नैतिक एवं समाजसेवा की भावना से युक्त होना चाहिए। तभी स्कूल का मानवीकरण कर सकता है और अनुशासन की रक्षा एवं लोकतांत्रिक नागरिक कर्त्तव्यों की पूर्ति के लिए नवयुवकों को तैयार कर

सकता है। समाज में समुचित आदर प्राप्त करने के लिए अध्यापकों को अपनी सेवा द्वारा समाज में अपनी उपयोगिता सिद्ध करनी होगी। उसे राष्ट्रीय जीवन के सभी क्षेत्रों में व्याप्त होना होगा। आचार्य जी अध्यापकों में गुटबंदी कदापि नहीं चाहते थे, बल्कि वे चाहते थे कि अध्यापक सुसंगठित हों ताकि वे शिक्षा समस्याओं पर विचार-विमर्श करने के लिए बारम्बार एकत्र हो सकें। यही उपाय है जिसके द्वारा वे अपने बैध स्वत्वों की रक्षा कर सकते हैं और समाज के सुधार एवं उन्नयन के क्षेत्र में अपना प्रभाव डाल सकते हैं।

आचार्य जी ने अध्यापकों के महत्व को प्रतिपादित करते हुए यह स्पष्ट रूप से कहा- ''आज आप लोगों का एक विशिष्ट स्थान है और आप लोगों की कार्य प्रणाली भविष्य निर्धारित करने वाली है। मुझे आशा है कि आप निर्भय रूप से साहस के साथ दायित्वपूर्ण करने और शिक्षाक्रम को ऐसा बनाने की शक्ति रखते हैं कि हम जीवन में सामाजिक एवं आध्यात्मिक महत्व प्राप्त कर सकें जिसके कारण मानव जीवन उदात्त होता है।

शिक्षक-शिक्षार्थी संबंध

गुरु-शिष्य के संबंध में आचार्य जी शिक्षक के व्यक्तित्व पर सबसे अधिक ध्यान दिया करते थे, क्योंकि शिक्षक ही राष्ट्र-निर्माण में विद्यार्थियों के मन-मस्तिष्क में सकारात्मक दृष्टिकोण का सृजन कर विकास की आधारशिला तैयार करते हैं। परन्तु आज स्थिति पहले जैसी नहीं रही जब गुरु-शिष्य में भगवान और भक्त का भाव रहता था। शिष्य-गुरु के आश्रम में रहकर गुरु की सेवा करते हुए विद्यार्जन करते थे। गुरु भी उन्हें पुत्रवत् स्नेह देते थे। यही कारण था कि प्राचीन काल में गुरुओं को छात्रों का मानस पिता माना जाता था। परन्तु आज स्थिति पूर्णतः बदल चुकी है गुरु और शिष्य, दोनों के विचारों में स्वार्थ की झलक दिखाई देने लगी है। पारस्परिक प्रेम का अभाव हो गया है अर्थात् शिक्षक-शिक्षार्थी के मध्य आपसी सहयोग भी नगण्य हो गया है।

आचार्य नरेन्द्र देव जी शिक्षक और शिक्षार्थी में उदान्त भावों को फिर से प्रतिष्ठित करना चाहते थे। उनकी इच्छा थी कि छात्र व अध्यापक के मध्य परस्पर सहयोग व प्रेम की भावना होनी चाहिए। आचार्य जी का कहना था– ''शिक्षा के क्षेत्र में विद्यालय के अध्यापक, विद्यार्थी और व्यवस्थापक एक दूसरे के सहयोगी हैं। इस पुराने भाव को हमें फिर से जगाना है। अध्यापकों का काम केवल बुद्धि संबंधी शिक्षा और चरित्र के विकास में योगदान देना ही नहीं, उन्हें छात्रों में समाज के प्रति दायित्व की भावना भी पैदा करनी है। विद्यार्थियों की जिम्मेदारी के प्रति उनका कहना है कि विद्यार्थियों को अपने राष्ट्र को सबल और नूतन समाज का निर्माण करना है। समाज के विद्यार्थी ही नेता और निर्माता

होंगे। किन्तु आत्म संयम के बिना कोई भी व्यक्ति किसी जिम्मेदारी को निभा नहीं सकता। विद्यार्थियों को विद्यार्जन के दौरान यह भी जानना चाहिए कि यह तभी संभव है जब छात्र और गुरु का संबंध पारस्परित प्रेम व सहयोग पर आधारित हो। विद्यार्थियों के मानस का निर्माण करना, उनके चरित्र का विकास करना, उनमें जनतांत्रिक भाव भरना अध्यापक का कर्तव्य है जो अध्यापक केवल ज्ञान दान करता है, किन्तु विद्यार्थियों के विचार और चरित्र का निर्माण नहीं करता है वह एक योगय अध्यापक नहीं है। आचार्य जी का मानना था– ''सच्चा अध्यापक अपने विद्यार्थियों के सम्मान और प्रेम का भाजन होता है और उसके लिए अनुशासन पालन कराना अत्यन्त सुलभ होता है।''

अध्यापक का कर्त्तव्य है कि वह विद्यार्थियों के जीवन में उच्च सामाजिक आदर्शों को प्रतिष्ठित करे। अगर शिक्षक और शिक्षार्थी में निकट सम्पर्क स्थापित किया जाय तो नवयुवक विद्यार्थियों पर बिना अधिक भार डाले ही यह उद्देश्य सिद्ध हो सकता है। आचार्य जी के विचार में विद्यार्थियों को भी अच्छी तौर पर समझ लेना है कि विद्यालय के सुप्रबंध और प्रतिष्ठा में ही उनका भला है, शिक्षकों के मान की रक्षा करके ही वे अपने अध्ययन में उनका समुचित सहयोग प्राप्त कर सकते हैं।

शिक्षक और शिष्य की प्रतिष्ठा अवश्य भी अन्योन्याश्रित है। जब तक अध्यापक और उसके छात्रों के बीच विचारों और भावनाओं का उन्मुक्त आदान-प्रदान नहीं होता तब तक आदर्शित जीवन व सभ्य समाज का निर्माण नही हो सकता। आचार्य जी का कहना था कि आज के परिवेश में कक्षा के आकार में आयी असाधारण बढ़ोत्तरी से शिक्षक और शिक्षार्थी के बीच के संबंधों की धारणा अब बदल चुकी है। शिक्षक और शिक्षार्थी के बीच अतीत में पाया जाने वाला संबंध अब नहीं रह गया है। जोर-जबरदस्ती से अनुशासन स्थापित करने का पुराना तरीका अब नहीं चल सकता। शिक्षकों को यह नहीं भूलना चाहिए कि ऊपर से थोपा गया अनुशासन वास्तविक नहीं होता, बल्कि वास्तविक अनुशासन स्वतः उत्पन्न होता है।

अनुशासन

शिक्षा की गुणवत्ता को सुव्यवस्थित बनाये रखने के लिए आचार्य जी अनुशासन को बहुत ही आवश्यक समझते थे। परन्तु वे दमनात्मक अनुशासन के विरूद्ध थे। आचार्य जी आत्मानुशासन को महत्व देते हुए आत्मसंयम को प्रोत्साहित करने पर बल देते थे। आज के समाज में विद्यार्थियों के अन्दर अगर किसी चीज की कमी दिखाई दे रही है तो वह है आत्मसंयम। उन्होंने कहा भी है– ''आज चारों ओर इस बात की शिकायत होती है कि विद्यार्थियों में संयम की कमी हो गयी है। इसके क्या कारण हैं? इस पर हमको

विचार करना है क्योंकि बिना रोग का निदान जाने रोग का उपचार नहीं हो सकता। इस संयम की कमी के अनेक कारण हैं। जीवन की अनिश्चितता के कारण समाज की सब श्रेणियों में असंतोष पाया जाता है। समाज के मौलिक अधिकार के संबंध में भी तीव्र मतभेद हैं।... जहाँ तक विद्यार्थियों का संबंध है उनके साथ सहानुभूतिपूर्वक व्यवहार कर तथा उनके निकट संपर्क में आकर हम इस शिकायत को बहुत कुछ दूर कर सकते हैं।''

आचार्य जी यह मानते थे कि अनुशासन की समुचित व्यवस्था करना संस्था के अध्यक्ष का सामाजिक उत्तरदायित्व है और उन्होंने विद्यार्थियों के स्वशासन संस्थाओं की स्थापना पर बल दिया ताकि उनमें स्वशासन की भावना की पुष्टि हो, सामाजिक प्रबंध की क्षमता उत्पन्न हो ताकि इससे स्कूल का प्रबंध और अनुशासन का स्तर ऊँचा उठे। पर उनकी धारणा थी कि इस संबंध में विद्यार्थियों का सहयोग अवश्य ही लाभदायक सिद्ध हो सकता है। आचार्य जी कहना था– ''शिक्षक समुदाय अपने निष्पक्ष और सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार से विद्यार्थियों को अपनी ओर आकृष्ट कर उन्हें आत्मसंयम की शिक्षा दें, उनके जीवन को सद्‌भावनाओं से अनुप्राणित करें और अध्यक्ष की समुचित देख-रेख में स्कूल के प्रबंध में विद्यार्थियों के सहयोग को प्रोत्साहित करें।''

छात्रों में जो उत्साह होता है उसका सकारात्मक दिशा में उपयोग हो, इसके लिए अध्यापक को चाहिए कि वे छात्रों को सृजनात्मक कार्यों में ज्यादा व्यस्त रखें। ऐसा करने से भी उनमें अनुशासनहीनता समाप्त होगी। आचार्य जी का कहना था कि यदि अनुशासन बनाये रखना है तो छात्रों के जोश को रचनात्मक कार्यों में लगाया जाये और शिक्षकों तथा शिक्षार्थियों के बीच घनिष्ठ संबंध स्थापित हो। आचार्य जी कहते हैं:

''शिक्षा एक सहकारी प्रयत्न है, जिसमें अध्यापक और छात्र दोनों ही भाग लेते हैं। दोनों में आदर्श की एकता होने पर ही शिक्षा संस्थाओं में सच्चे अनुशासन की स्थापना संभव है। अनुशासनहीनता को समाप्त करने के लिए हमें अनुशासन की पुरानी अवधारणा में भी संशोधन करना होगा और शिक्षाकों तथा शिक्षार्थियों के बीच सौहार्द स्थापित करना होगा किन्तु अनुशासनहीनता की समस्या मूल रूप से सामाजिक संगठन की समस्या के साथ हल हो सकेगी।''

अत: उपरोक्त के आधार पर हम यह कह सकते हैं आचार्य जी दमनात्मक अनुशासन जो पुराने तौर-तरीके पर आधारित थी, उचित नहीं मानते थे। उन्होंने आत्मानुशासन पर बल दिया और इसकी स्थापना में शिक्षक और शिक्षार्थी के प्रेमपूर्ण व्यवहार व परस्पर घनिष्ठ संबंध उपयुक्त व उचित सम्प्रेषण सभी को अपेक्षित माना।

18 मार्च, 1952 ई. को आचार्य नरेन्द्र देव की अध्यक्षता में माध्यमिक शिक्षा पुनर्गठन समिति' का गठन किया गया था। 1953 ई. में इस कमेटी के रिपोर्ट में अनुशासन के संबंध में भी अपने विचार व्यक्त किये थे। समिति के सुझाव इस प्रकार हैं:

1. विद्यालय के एक अध्यापक की देख-रेख में 20 से 30 विद्यार्थी रखे जाएं, अध्यापक एक अभिभावक की भांति इनके आचरण पर ध्यान दे, छात्रों के व्यवहार का लेखा-जोखा रखे, ताकि एक स्वस्थ अनुशासन का वातावरण स्थापित हो।
2. विद्यालयी छात्र की एक समिति बनाई जाये जो विद्यालयी अनुशासन में प्रधानाचार्य का सहयोग करें।
3. शिक्षक-अभिभावक के मध्य कभी-कभी गोष्ठी का आयोजन हो जिसमें अनुशासन की विभिन्न तौर-तरीकों व उसकी कुशल संचालन की व्यवस्था पर विचार हो।
4. जो विद्यालय एवं छात्र बहुत अनुशासित हों उसे सरकार की ओर से प्रोत्साहन दिया जाए।
5. 17 वर्ष से कम उम्र के छात्रों को सिनेमा देखना निषेध हो।
6. अनुशासन की सुन्दर व्यवस्था हो इसके लिए अभिभावकों का सहयोग लिया जाए।
7. श्रम की महत्ता के लिए प्रत्येक छात्र से समाजसेवा करवानी चाहिए और इसके लिए छात्र को हर हाल में श्रमदान और समाजसेवा में चालीस घंटे देने चाहिए।
8. संस्था के प्रमुख को निष्कासन, प्रतिबंधन व अनुशासनात्मक कार्यवाही करने का अधिकार होना चाहिए।
9. अनुशासनप्रियता को बढ़ाने के लिए लड़के व लड़कियों को अपना स्वास्थ्य भी ठीक रखना चाहिए। इसके लिए विद्यालय में एक पूर्णकालीन फिजिकल ट्रेनिंग इन्ट्रक्टर की नियुक्ति होनी चाहिए।
10. प्रधानाचार्यों को अनुशासन भंग करने वाले विद्यार्थियों को दंड देने का अधिकार हो, उनके निर्णय के विरुद्ध कोई अपील न की जा सके।
11. छात्रों के स्वास्थ्य, शैक्षिक कार्य, पाठ्यसहगामी क्रियाएं, श्रमकार्य और व्यवहार का पूरा-पूरा लेखा-जोखा रखा जाए।
12. समिति ने छात्रों की आवश्यकताओं के अनुसार उनका वर्गीकरण करने के लिए सुझाव दिया।

स्त्री शिक्षा

स्त्री शिक्षा पर आचार्य जी ने विशेष ध्यान दिया। उन्होंने समाज के सर्वांगीण विकास में शिक्षा के क्षेत्र में स्त्री-पुरुष असमानता को बाधक माना तथा दोनों को समुचित शिक्षा

प्राप्त करने का सुझाव दिया। आचार्य जी का मानना था कि अगर स्त्रियों की शिक्षा समुचित ढंग से नहीं हुई तो वह कुशलतापूर्वक अपने बच्चों का पालन नहीं कर पाएंगी और न ही घर-गृहस्थी को सुचारु रूप से संचालित कर पाएंगी। परिणामस्वरूप परिवार में सुसंस्कार का सृजन नहीं हो पाएगा। इससे पास-पड़ोस प्रभावित होगा, जिसका असर धीरे-धीरे पूरे देश में दिखने लगेगा क्योंकि देश की स्त्री शिक्षा के अभाव में उत्तम नागरिक नहीं मिल पायेंगे। प्रो. मुकुट बिहारी लाल ने लिखा है– आचार्य नरेन्द्र देव स्त्री-पुरुषों की 'असमानता अमानवीय' और स्त्री जाति के पिछड़ापन उन्नति के लिए बाधक समझते थे। उनकी धारणा थी कि 'स्त्री जाति की उत्साहपूर्वक क्रियाशीलता' के बिना कोई भी महान् सामाजिक परिवर्तन संभव नहीं है।

इसलिए वे उन सब सांस्कृतिक विधियों और मानदंडों को विरोधी मानते थे जो स्त्रियों को समाज में परावलम्बी और गौण बनाते हैं, तथा उन्हें सांस्कृतिक उत्थान के लिए समुचित सुविधाएं और अवसर नहीं देते।

आचार्य जी ने स्त्रियों के लिए गृह विज्ञान की शिक्षा को अनविार्य एवं आवश्यक माना है। जैसा कि सन् 1953 की आचार्य नरेन्द्र देव कमेटी की रिपोर्ट में भी गृह विज्ञान की शिक्षा को छात्राओं के लिए आवश्यक एवं अनिवार्य मानने की बात कही गयी है। इस समिति की रिपोर्ट में छात्राओं के लिए अलग से तकनीकी विद्यालय खोलने की भी बात कही गयी है। ऐसे विषयों को भी रखने की सिफारिश आचार्य नरेन्द्र देव कमेटी 1953 ई. ने की जो छात्राओं के रूचि के अनुरूप हो।

इस प्रकार स्पष्ट है कि आचार्य नरेन्द्र देव स्त्री शिक्षा को चतुर्दिश बनाना चाहते थे अर्थात् हर प्रकार की शिक्षा की व्यवस्था करना चाहते थे ताकि स्त्रियाँ स्वावलंबी बन सकें। वे उन्हें 'सांस्कृतिक उत्थान' तथा 'शिक्षा और राष्ट्र के सांस्कृतिक कार्यों में भाग लेने की समान' सुविधाएँ दिए जाने का समर्थन करते थे।

प्रौढ़ शिक्षा

साक्षरता की सफलता के लिए आचार्य जी ने प्रौढ़ शिक्षा को भी आवश्यक माना। उन्होंने शिक्षा के सर्वांगीण विकास के लिए प्रौढ़ शिक्षा की पूर्ण व्यवस्था करने पर भी बल दिया। परन्तु आचार्य जी ने यह भी माना कि साक्षरता का तात्पर्य केवल लिखना-पढ़ना आ जाना ही नहीं है, बल्कि साक्षरता का वास्तविक अर्थ सामाजिक, राजनैतिक तथा आर्थिक रूप से ज्ञान संपन्न होना है। एक व्यक्ति शिक्षित तभी कहा जाएगा जबकि वह देश की विभिन्न समस्याओं पर तार्किक विचार कर सके।

आचार्य जी ने ऐसे व्यक्तियों को भी साक्षर नहीं माना जो धन की लोलुपता में भद्दे एवं गंदे साहित्य प्रकाशित करके समाज में अश्लीलता फैलाने का कार्य करते हैं। आचार्य जी ने कहा भी है– ''साक्षर हो जाने पर कोई व्यक्ति केवल साधारण किस्से-कहानियां पढ़ सकता, किन्तु वह शिक्षित नहीं हो सकता और न ही अपने व्यवहारों को सामाजिक और विवेकयुक्त ही कर सकता है।

इस प्रकार साक्षरता को आचार्य जी व्यापक दृष्टिकोण के रूप में देखते हैं। साक्षरता का वास्तविक उद्देश्य प्रत्येक नागरिक को उसके वास्तविक कर्त्तव्यों के प्रति जागरूक बनाना है, न कि स्वार्थ सिद्धि करना है। प्रौढ़ शिक्षा योजना इस प्रकार क्रियान्वित होना चाहिए कि व्यक्ति में साक्षरता के विकास के साथ-साथ जीवन के प्रति एक स्वस्थ दृष्टिकोण का विकास हो सके तथा उसके जीवन में मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा हो सके। साथ ही आचार्य ने यह भी आवश्यक माना– ''साहित्यिक शिक्षा के अतिरिक्त राज्य का यह कर्त्तव्य है कि वह समय-समय पर जनता को महत्त्वपूर्ण सार्वजनिक समस्याओं की भी शिक्षा दे। उदाहरणस्वरूप सरकार को चाहिए था कि वह विधान परिषद द्वारा प्रस्तुत संविधान पर प्रत्येक नगर और गाँव में सार्वजनिक रूप से विचार-विमर्श करने की आवश्यकता करती। वास्तव में यह जनता के लिए काफी उपयोगी शिक्षा होगी।

आचार्य जी का मानना था कि हमारी शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जिससे विचारों एवं भावों की एकता परिपुष्ट हो, ताकि मन, बुद्धि और हृदय की एकता साधित हो सके। जनतंत्र की स्थापना के लिए जन शिक्षा नितान्त आवश्यक है। ऐसी शिक्षा व्यवस्था के द्वारा ही जनता में राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय चेतना को जागृत किया जा सकता है। अतएव प्रथम आवश्यकता साक्षरता का व्यापक प्रचार तथा प्रसार हैं। स्वस्थ जनमत का निर्माण करने में पत्र-पत्रिकाओं का विकास तथा जनता को उसका अध्ययन करने का अधिकाधिक अवसर मिलना चाहिए।

पत्र-पत्रिकाओं के भी महान् दायित्व हैं। उन्हें भद्दी, झूठी, स्वार्थपूर्ण तथा घृणा उत्पन्न करने वाली बातें प्रकाशित नहीं करना चाहिए। राजनीतिक दल, व्यवसायी वर्ग तथा अन्य निहित स्वार्थों वाले तत्व प्रेस के ऊपर अपना अवांछनीय प्रभाव बनाये रखेंगे तो ऐसे पत्रों से साक्षरता के वास्तविक एवं प्रभावपूर्ण प्रसार को आघात पहुँचेगा।

इस प्रकार आचार्य जी प्रौढ़ शिक्षा को भी महत्वपूर्ण मानते हुए साक्षरता के स्वस्थ स्वरूप के विकास को आवश्यक मानते थे। उन्होंने निरक्षरता को दूर करने, जनशिक्षा की योजनाओं को कार्यान्वित करने हेतु उच्चतर शिक्षा के स्वरूप को बदलने की आवश्यकता पर बल दिया है।

पाठ्यपुस्तक

आचार्य नरेन्द्र देव कमेटी 1953 ने पाठ्यपुस्तकों के संबंध में भी अपना सुझाव प्रस्तुत किया। इस कमेटी के हायर सेकेन्ड्री विद्यालयों के लिए निर्धारित पाठ्यपुस्तकों के संदर्भ में निम्नलिखित सुझाव प्रस्तुत किये :

1. प्रत्येक विषय का विस्तृत पाठ्यक्रम तैयार किये जाएँ और उसके अनुसार पाठ्यपुस्तकें तैयार कराई जाएं।
2. विभिन्न विषयों की अच्छी पाठ्यपुस्तकों को प्रकाशित करने के लिए इंग्लैंड और अमेरिका की भाँति गुणवत्ता के स्तर को जाँचने के लिए कुछ संगठन, संस्थाएं तथा विशेष सोसाइटियाँ बनाई जाएं।
3. विषय का पाठ्यक्रम शिक्षा विभाग द्वारा निर्धारित किया जाएगा और ऐसे वरिष्ठ शिक्षक जो उस विषय को विगत कई वर्षों से पढ़ा रहे होंगे उनसे ही पाठ्यक्रम शिक्षा विभाग निर्मित करवायेगा।
4. अच्छी पाठ्यपुस्तकों को लिखने के लिए विद्वानों को आर्थिक सहायता देकर प्रोत्साहित किया जाये। अर्थात् अच्छी पाठ्यपुस्तकों को ही सरकार बाजार में उपलब्ध कराए।
5. पाठ्यपुस्तकों के प्रकाशन के लिए मान्यता प्राप्त प्रकाशकों को ही अवसर दिये जाएँ।
6. पाठ्यपुस्तकों को चयन करने का अधिकार संबंधित विषय के अध्यापकों एवं प्रधानाचार्यों को हो।
7. एक वर्ष जो पाठ्यपुस्तक चुनी जाएँ वह कम से कम तीन वर्ष तक अवश्य ही चलाई जाएँ।

व्यावसायिक निर्देशन एवं परामर्श

छात्रों को अपनी रूचि के व्यवसाय का चयन करने के लिए उनकी अभियोग्यता को पहचानना और उसके आधार पर उन्हें इच्छित विषय पढ़ने का परामर्श देना तथा समय-समय पर निर्देशन देना बहुत ही आवश्यक है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए एक मानक परीक्षा लेने की आवश्यकता पर बल देते हुए आचार्य नरेन्द्र देव कमेटी ने 1953 ई. में जो सुझाव दिया वह यह कि इस प्रकार की मानक परीक्षा से छात्रों की अभियोग्यता का पता चल जाने पर उसी के अनुरूप निर्देशन देकर संबंधित दात्र को उचित व्यवसाय चुनने में सहायता दी जा सकती है ताकि वह कुशलता से जीविकोपार्जन कर सके। कमेटी ने इस

संदर्भ में निम्नलिखित सुझाव दिये हैं:

1. कमेटी ने निम्न क्षेत्रों में परीक्षा को मानकीकृत करने का सुझाव दिया:
   (अ) बुद्धि मापन के लिए लिया जाने वाला स्टेनफोर्ड विनेट टेस्ट हिन्दी में अपनाने का सुझाव दिया।
   (ब) सामूहिक परीक्षा व मानसिक योग्यता की परीक्षा का स्तरीय होने का सुझाव दिया।
2. मनोविज्ञानशाला केंद्र हर जिले में होने चाहिए। सरकार को शिक्षा व मनोवैज्ञानिक शोध के लिए एक परिषद की स्थापना करनी चाहिए।
3. ट्रेनिंग कॉलेज का पाठ्यक्रम व विभिन्न विश्वविद्यालय की शिक्षा की डिग्री में निर्देशन के पहलू व मनोविज्ञान को शामिल करने के लिए परिवर्तन होना चाहिए। स्कूल के हर छात्र का रिकार्ड प्रारम्भिक अवस्था से रखना चाहिए। ऐसे रिकार्ड छात्रों को निर्देशन एवं परामर्श देने में सहायक होते हैं।
4. विद्यालयों के योग्य एवं इच्छुक अध्यापकों को मार्गदर्शन का प्रशिक्षण दिया जाए। ये अध्यापक क्षेत्रीय मनोविज्ञानशालाओं के सहयोग से अपने-अपने विद्यालयों में मार्गदर्शन का कार्य करें।
5. मार्गदर्शकों को प्रशिक्षण के लिए एक वर्षीय प्रशिक्षण की व्यवस्था की जाये। अत: आवश्यक है कि मनोविज्ञानशालाओं को समुन्नत किया जाये।

परीक्षा

आचार्य नरेन्द्र देव कमेटी (1953 ई.) ने परीक्षा के संबंध में भी सुझाव दिया। कमेटी ने परीक्षाओं को पूर्णत: पारदर्शी बनाने पर जोर दिया। स्वयं आचार्य जी ने परीक्षाओं के स्वरूप को निष्पक्ष रूप से सम्पादित कराने की वकालत करते हुए कहा है कि इससे छात्रों के वास्तविक ज्ञान प्राप्ति का मूल्यांकन हो जाता है। परीक्षा का स्वरूप कैसा हो इस पर आचार्य नरेन्द्र देव कमेटी ने सुझाव दिया कि–

1. माध्यमिक शिक्षा व विश्वविद्यालय का पाठ्यक्रम तीन-तीन साल का होना चाहिए। सेकेण्डरी शिक्षा में केवल 11वीं कक्षा रहेगी और 12वीं कक्षा को विश्वविद्यालय पाठ्यक्रम में जोड़ दिया जाये।
2. इस तरह माध्यमिक शिक्षा के अन्तिम स्तर पर केवल अन्तिम वर्ष अर्थात् 11वीं कक्षा की परीक्षा ली जाये। यदि सरकार इसे शीघ्र लागू न कर पाये तो ऐसी स्थिति में समिति ने इण्टरमीडिएट की परीक्षायें पूर्ववत् लेते रहने का सुझाव दिया।

3. हाईस्कूल की परीक्षा के संबंध में कहा कि यह परीक्षा केवल व्यक्तिगत छात्रों के लिए होगी। संस्थागत छात्रों को 10वीं कक्षा से 11वीं कक्षा में कक्षोन्नति दी जाएगी। अगर संस्थागत कोई भी छात्र हाईस्कूल का प्रमाण पत्र चाहे तो उन्हें भी हाईस्कूल की परीक्षा में बैठना पड़ेगा।

4. आयु के विषय में समिति ने सुझाव दिया कि हाईस्कूल के छात्र की आयु 14 वर्ष व इंटर के छात्र की आयु 16 वर्ष होनी चाहिए। व्यक्तिगत छात्र के लिए हाईस्कूल की 16 वर्ष की आयु तथा लड़कियों के लिए न्यूनतम 15 वर्ष की आयु परीक्षा के लिए होनी चाहिए।

इस प्रकार आचार्य नरेन्द्र देव जी ने शिक्षा की गुणवत्ता को साकार रूप देने के लिए शिक्षा से संबंधित विभिन्न शिक्षण बिन्दुओं पर अपने प्रखर दृष्टिकोण का समन्वित रूप प्रस्तुत किया जिसका विस्तृत विवेचन उपरोक्त शिक्षण बिन्दुओं के अन्तर्गत किया गया।

आचार्य नरेन्द्र देव जी के शैक्षिक विचार इस समसामयिक भारत में प्रासंगिक और उपादेय है।

संदर्भ

बिहारी मुकुट लाल, (1987), आचार्य नरेन्द्र देव, युग और नेतृत्व, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी।

बिहारी मुकुट लाल, आचार्य नरेन्द्र देव, जीवन और सिद्धांत आचार्य नरेन्द्र देव समाजवादी संस्थान, वाराणसी।

संपादक, जगदीश चन्द्र दीक्षित, आचार्य नरेन्द्र देव, युग और विचार, सूचना एवं जनसंपर्क विभाग, उ.प्र.

संपादक, जगदीश चन्द्र दीक्षित, आचार्य नरेन्द्र देव, सूचना एवं जनसंपर्क विभाग, उ.प्र.

मोहन सुरेन्द्र, आचार्य नरेन्द्र देव और उसका पुत्र, आचार्य नरेन्द्र देव समाजवादी संस्थान, वाराणसी

बिहारी मुकुट लाल, जनतांत्रिक समाजवादी संस्कृति और सभ्यता, आचार्य नरेन्द्र देव समाजवादी संस्थान, वाराणसी

बिहारी मुकुट लाल, देश की दशा और लोकतांत्रिक समाजवाद की मान्यताएँ आचार्य नरेन्द्र देव समाजवादी संस्थान, वाराणसी

सम्पादक अजय कुमार, (1989), आचार्य नरेन्द्र देव-व्यक्तित्व और प्रमुख विचार, आचार्य नरेन्द्र देव, समाजवादी संस्थान, वाराणसी।

बिहारी मुकुट लाल, जनतांत्रिक समाजवादी संस्कृति और सभ्यता, आचार्य नरेन्द्र देव समाजवादी संस्थान, वाराणसी

आचार्य नरेन्द्र देव, विचार साहित्य दर्शन, पटना।

भसीन, प्रेम (1991), भारत में सामाजिक, सांस्कृतिक परिवर्तन, आचार्य नरेन्द्र देव समाजवादी संस्थान, वाराणसी,

आचार्य नरेन्द्र देव, समाजवाद और राष्ट्रीय क्रान्ति, आगरा।

आचार्य नरेन्द्र देव, राष्ट्रीयता और समाजवाद, ज्ञान मंडल लिमिटेड, वाराणसी, संवत् 2006।

आचार्य नरेन्द्र देव, सोसलिस्ट क्या है? उ.प्र. सूचना एवं राष्ट्रभाषा प्रकाशन, लखनऊ।

आचार्य नरेन्द्र देव, (1988) साहित्य शिक्षा एवं संस्कृति, प्रभात प्रकाशन, चावड़ी बाजार, दिल्ली।

बिहारी, मुकुट लाल, समाजवादी कार्यक्रम की रूपरेखा आचार्य नरेन्द्र देव समाजवादी संस्थान, वाराणसी

डॉ. पाण्डेय, रामशकल, (2009) उभरते हुए भारतीय समाज में शिक्षा, श्री विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा-2, द्वितीय संस्करण

प्रो. चौबे, सरयू प्रसाद, (1972) तुलनात्मक शिक्षा, 'विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा

प्रो. चौबे, सरयू प्रसाद व अखिलेश, भारतीय शिक्षा का इतिहास और उसकी समस्याएं, भवदीय प्रकाशन, अयोध्या-फैजाबाद

डा. तरूण, हरिवंश, (2008) भारतीय शिक्षा - उसकी समस्याएं तथा विश्व की शिक्षा प्रणालियाँ, प्रकाशन संस्थान, दयानन्द मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली

डा. सिंह, राघव प्रसाद, (1961), जनतंत्र में शिक्षा के उद्देश्य, हिन्दी साहित्य भण्डार, अमीनाबाद, लखनऊ

प्रो. प्रसाद, मुनेश्वर, (1961) पाश्चात्य शिक्षा का इतिहास दिल्ली पुस्तक सदन, गोविन्द मिश्र रोड, पटना।

ओझा, कमलापति, (1965), देश-विदेश के महान शिक्षक, नन्द किशोर एंड ब्रदर्स प्रकाशन, वाराणसी

भारतद्वाज, दिनेश चन्द्र (1973), भारतीय शिक्षा की आधुनिक समस्याएं, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा

मलैया के.सी. (1971), भारतीय शिक्षा आयोग समितियां, लोक भारतीय प्रकाशन, इलाहाबाद

चौबे, सरयू प्रसाद (1969), भारतीय एवं पाश्चात्य शिक्षाशास्त्री, राम प्रसाद एंड संस, वाराणसी

जौहरी, वी.पी. व पी.डी. पाठक, भारतीय शिक्षा का इतिहास-विनोद पुस्तक प्रकाशन, आगरा

प्रसाद, प्रो. मुनेश्व, भारतीय शिक्षा का इतिहास - श्री अजन्ता प्रेस लिमिटेड, पटना

मिश्र, आत्मानन्द, (1972), भारतीय शिक्षा के प्रर्वतक - विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा

गुप्त, लक्ष्मीनारायण, (1972), महान भारतीय शिक्षा शास्त्री, कैलास प्रकाशन, इलाहाबाद

दुबे, डा. रमाकान्त, (2002), महान भारतीय शिक्षा शास्त्री, प्रेम नारायण बैजल प्रकाशन, वक्सीपुर, गोरखपुर।

अग्रवाल, जे.पी, (1971), भारतयी शिक्षा की वर्तमान समस्याएं, आर्य बुक डिपो, करोलबाग, नई दिल्ली

दूबे, डा. रमाकान्त, विश्व की कुछ महान् शिक्षाशास्त्री, मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ

केशव प्रसाद, युग प्रवर्तक शिक्षाशास्त्री, शिक्षा प्रकाशन, केन्द्र, बलिया

ग्रोवर इन्द्रा, (1984), संसार के महान् शिक्षाशास्त्री, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी।

लाल, रमन बिहारी, शिक्षा के दार्शनिक एवं समाज शास्त्रीय सिद्धांत, रस्तोगी पब्लिकेशन, शिवाजी रोड, 15वां संस्करण, मेरठ

पांडेय, डॉ. रामशकल, (1983), शिक्षा दर्शन, विनोद पुस्तक मंदिर, षष्ठ संस्करण, आगरा

मिश्रा, मंजु, (2007), भारतीय शिक्षा पद्धति और उसकी समस्याएं, ओमेगा पब्लिकेशन, नई दिल्ली

त्रिवेदी, राकेश, (2006), भारतीय शिक्षा का इतिहास (स्वतंत्रतापूर्व), ओमेगा पब्लिकेशन, नई दिल्ली

लाल रमन बिहारी, भारतीय शिक्षा का इतिहास एवं उसकी समस्याएं, रस्तोगी पब्लिकेशन, मेरठ

भटनागर, सुरेश (2003), आधुनिक भारतीय शिक्षा का इतिहास और उसकी समस्याएं, सूर्या पब्लिकेशन्स, मेरठ (दशम् संस्करण)

गुप्ता, डा. एस.पी. एवं अलका, (2009), भारतीय शिक्षा का इतिहास एवं समस्याएं, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद

त्यागी गुरसरन दास, भारत में शिक्षा का विकास, श्री बिनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा

त्रिपाठी, डॉ. लालजी (2005), भारतीय शिक्षा दर्शन : एक अनुशीलन, मिश्रा ट्रेडिंग कारपोरेशन, वाराणसी

उपाध्याय, बलदेव, भारतीय दर्शन, शारदा प्रकाशन मंदिर, वाराणसी

डॉ. राधकृष्णन्, (1995) भरतीय दर्शन, राजपाल एंड संस, दिल्ली

पांडेय रामशकल, भारतीय शिक्षा दर्शन, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा

शर्मा, रामनाथ, भारतीय शिक्षा दर्शन, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा

अग्निहोत्री, रवीन्द्र, (2006) आधुनिक भारत शिक्षा की समस्याएं और समाधान, जयपुर, हिन्दी अकादमी

गुप्ता, एस.पी. तथा अलका गुप्ता, (2008) भारतीय शिक्षा का सफरनामा, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद

गुप्ता, एस.पी. तथा अलका गुप्ता, (2007) भारतीय शिक्षा का तानाबाना, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद